दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) एंव श्रीलंका

Dear Mrs. Phadnis
with Love
Swaroop

एम. फिल. हेतु प्रस्तुत

लघु-शोध प्रबन्ध

निर्देशिका :

श्रीमती स्वरुपरानी दुबे

सहायक प्रोफेसर

दक्षिण एशिया अध्ययन केन्द्र

प्रस्तुतकर्त्ता :

कृष्ण गोपाल

दक्षिण एशिया अध्ययन केन्द्र,

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

1986

प्रमाणित किया जाता है कि दक्षिण एशिया अध्ययन केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के एम. फिल के विद्यार्थी श्री कृष्ण गोपाल ने मेरे मार्ग दर्शन में "सार्क तथा श्रीलंका" शीर्षक से प्रस्तुत शोध ग्रन्थ हेतु कार्य किया जो एम. फिल पाठ्यक्रम के द्वितीय प्रश्न-पत्र की पूर्ति हेतु आँकलनार्थ प्रस्तुत करने के लिये अधिकृत हैं।

S. Dubey

(स्वरूप रानी दुबे)

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना - पृष्ठ I - II

अध्याय		पृष्ठ
1.	दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग की पृष्ठभूमि ।	1 - 23
2.	दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग का प्रादुर्भाव ।	24 - 50
3.	दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग का विकास, लक्ष्य एंव सिद्धान्त ।	51 - 82
4.	श्रीलंका एंव सार्क संगठन	83 - 111
5.	सार्क का भविष्य एंव निष्कर्ष	112 - 121
	संदर्भ ग्रन्थ सूची	122 - 130

प्रस्तावना

अपने इस लघु शोध ग्रन्थ में मैंने उन सभी कारणों को ढूंढ निकालने का प्रयत्न किया है जो दक्षिण एशिया में शंका, अविश्वास एंव संघर्ष का स्त्रोत रहे हैं । इसके अतिरिक्त मैंने इस प्रश्न का उत्तर भी ढूंढने का प्रयास किया है कि शंका एंव अविश्वास की इस पृष्ठभूमि के होते हुये भी क्षेत्रीय सहयोग के रूप में सार्क संगठन का निर्माण किस प्रकार संभव हुआ तथा 1980 तक ऐसा कोई कदम क्यों नहीं उठाया जा सका था । मैंने यह भी खोजने का प्रयत्न किया है कि सार्क के गठन के मूल में किन आंतरिक एंव बाह्य शक्तियों का योगदान रहा है तथा वे इसको प्रारंभ में क्या स्वरूप प्रदान करना चाह रही थी तथा किन परिस्थितियों में इस संगठन को क्या अंतिम रूप दिया गया । विभिन्न विद्वानों एंव राष्ट्रों ने इस सम्बन्ध में क्या प्रतिक्रियाये व्यक्त की तथा भविष्य में इसकी क्या परिणिति हो सकती है । इस प्रकार के सैंकड़ों प्रश्न हर उस विद्यार्थी को आकर्षित करने के लिये पर्याप्त हैं जो दक्षिण एशिया क्षेत्र को समझने एंव अध्ययन में रूचि रखते हैं । इन्हीं अनसुलझे प्रश्नों से प्रेरित होकर मैंने अपने एम. फिल. के द्वितीय प्रश्न-पत्र हेतु लघु शोध के रूप में "दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) एंव श्रीलंका" विषय को चुना ।

श्रीलंका का दृष्टिकोण सार्क के प्रति अन्य सार्क सदस्य राष्ट्रों से भिन्न प्रकार का रहा है तथा श्रीलंका के दृष्टिकोण में समय-समय पर सार्क के प्रति परिवर्तन होते रहे हैं । सार्क के प्रति उसका यह गुणात्मक परिवर्तन क्या स्वाभाविक था या अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति का एक साधनमात्र ! इस प्रकार श्रीलंका के परिवर्तित दृष्टिकोण से भी यह स्पष्ट है कि सामयिक

परिस्थितियों में "सार्क एंव श्रीलंका" जैसा विषय किसी भी शोधकर्ता के लिये आकर्षण का विषय हो सकता है ।

इस विषय पर यद्यपि बिखरी हुयी सामग्री पर्याप्त मात्रा में मिल सकती है, परन्तु एक ही स्थान पर इकट्ठी सामग्री का मिलना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि इस विषय पर अभी आवश्यक एंव पूर्णरूपेण शोधकार्य नहीं हो सका है । इस दृष्टि से भी यह अध्ययन उपयोगी सिद्ध हो सकता है ।

यद्यपि इस अध्ययन में बहुत सारी त्रुटियां हो सकती हैं परन्तु फिर भी मैंने इस विषय पर अधिकाधिक गहन एंव विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का भरसक प्रयत्न किया है ।

अंत में व्यक्तिगत रूप से मैं उन सबका हृदय से आभारी हूं, जिन्होंने इस अध्ययन को संपन्न कराने में प्रत्यक्ष एंव परोक्ष रूप से सहयोग प्रदान किया है ।

कृष्ण गोपाल

प्रथम अध्याय

दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग की पृष्ठ भूमि :

दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग की औपचारिक पहल 2 मई, 1980 को बांग्लादेश के स्वर्गीय राष्ट्रपति जनरल जिया उर रहमान ने की ।[1] उन्होने विदेशमंत्री श्री शमशुल हक को आदेश जारी किये कि क्षेत्र के छः अन्य राष्ट्रो के लिये क्षेत्रीय सहयोग की स्थापना हेतु पत्र प्रेषित कर दिये जाये । 25 नवम्बर, 1980 को इस आशय के पत्र श्री शमशुल हक द्वारा भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल , भूटान एवं मालदीव के राष्ट्राध्यक्षों के नाम भेजे गये ।[2]

इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम सातों राष्ट्रो के विदेश सचिव 21 से 23 अप्रेल 1981 को श्रीलंका की राजधानी कोलम्बों में विचार विमर्श हेतु एकत्रित हुये ।[3]

विभिन्न देशों एंव राजधानियों में विदेश सचिवों की पांच मीटिंगों के बाद राजनीतिक स्तर पर सर्वप्रथम विदेशमंत्रियों की प्रथम बैठक । और 2 अगस्त 1983 को नई दिल्ली के विज्ञान भवन में आयोजित की गयी । इसमें इस सहयोग को दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग (सार्क) का नाम दिया गया तथा इसके लक्ष्य एंव सिद्धान्त स्वीकृत किये गये । इस बैठक में सातों राष्ट्रो के विदेशमंत्री आपसी सहयोग के नौ क्षेत्रों पर सहमत हुये । यह क्षेत्र निम्न थे -

1- कृषि
2- स्वास्थ्य और जनसंख्या
3- मौसम विज्ञान
4- डाक सेवा
5- ग्रामीण विकास
6- विज्ञान और तकनीकी सहयोग
7- संचार
8- यातायात तथा
9- खेल, कला एवं संस्कृति[4]

इस सम्बन्ध में सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण कदम 7 और 8 दिसम्बर 1985 को बांग्लादेश की राजधानी ढ़ाका में प्रथम शिखर सम्मेलन का आयोजन करके उठाया गया । इस सम्मेलन में सातों राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्षों ने इसे "दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन" का नाम देकर विधिवत एवं संस्थात्मक रूप प्रदान किया तथा चार्टर को स्वीकृति प्रदान करके एक नये युग का सूत्रपात किया । [5]

सार्क से पूर्व क्षेत्रीय संगठनों का अभ्युदय :-

"दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग संगठन" का गठन हालांकि एक नवीन कदम कहा जा सकता है, लेकिन इससे पूर्व इस तरफ पहले भी कई महत्व-पूर्ण कदम उठाये जा चुके थे ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व में क्षेत्रीय संगठनों का अभ्युदय आर्थिक एवं सैनिक सुरक्षा हेतु काफी तेजी से किया गया । 1947 में "रियो पैक्ट", 1948 में अमेरिकन राज्यों का संगठन (ओ0ए0एस0), 1949 में "उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन" (नाटो), 1954 में "दक्षिण पूर्व एशिया संगठन" (सीयेटो) 1955 में "बगदाद पैक्ट" एवं "वार्सा पैक्ट", 1957 में "यूरोपीय आर्थिक समुदाय" (ई0ई0सी) तथा 1961 में "दक्षिण पूर्व एशिया संगठन" (ए0एस0ए0) की स्थापना की जा चुकी थी । 1967 में दक्षिण पूर्व एशिया संगठन का नाम "दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्रों का संगठन" (एशियान) कर दिया गया । [6]

विश्व में अब तक विकसित रूप, क्षेत्र और आकार की दृष्टि से क्षेत्रीय सहयोग संगठनों को तीन भागों में बांटा जा सकता है -

(1) सुरक्षा सहयोग हेतु सैनिक समझौते जैसे- "नाटो", "वार्सा पैक्ट" तथा "बगदाद पैक्ट" आदि ।

(2) राजनीतिक सहयोग के लिये गठित जैसे- "अफ्रीकी एकता संगठन" "अमेरिकी राज्यों का संगठन" "अरब लीग आदि ।

(3) आर्थिक क्षेत्र में सहयोग हेतु - "यूरोपीय आर्थिक समुदाय" "कामकॉन" "लेटिन अमेरिकी मुक्त व्यापार क्षेत्र (एल0ए0एफ0टी0ए0) "अरब संयुक्त बाजार" (ए0सी0एम0), "खाडी सहयोग परिषद" (जी.सी.सी.) सेन्ट्रल अफ्रीकन कस्टमस यूनियन (सी0एस0यू) "दी कैरेबियन फ्री ट्रेड एरिया (सी.एफ.टी.ए.) "एशियान" आदि । हालांकि ये आर्थिक संगठन राजनीतिक भूमिका भी निभाते रहे है ।

एशिया एंव दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग हेतु सर्वप्रथम 1945 में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ते हुये पं0 जवाहर लाल नेहरू ने उठायी । नेहरू जी ने स्पष्ट घोषित किया था कि "भारत, इरान, ईराक, अफगानिस्तान और बर्मा" को मिलाकर "साउथ एशियन फैडरेशन" का निर्माण किया जाना चाहिये ।[7]

स्वतन्त्रता से पूर्व ही नेहरू जी की यह घोषणा त्रुटिपूर्ण रही क्योंकि ब्रिटिश शासक इस खतरे को भांपकर कुछ ऐसे अन सुलझे विवाद जान-बूझकर छोड गये, जिनको लेकर दक्षिण एशिया के राष्ट्र आज तक झगड़ रहे हैं तथा आपसी सदभाव विकसित करने में असफल रहे हैं ।

भारत आरम्भ से ही आपसी सहयोग को उन्नति का महत्त्वपूर्ण मार्ग मानता रहा है । 23 मार्च 1947 को "एशियाई सम्मेलन के उदघाटन भाषण में नेहरू जी ने कहा था कि "हमारे पडौसी राष्ट्र अफगानिस्तान, तिब्बत, नेपाल, भूटान, बर्मा और सीलोन सहयोगी एवं नजदीकी सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं । हम एक जुट होकर ही सयुक्त विकास कर सकते है ।[8] क्षेत्रीय सहयोग की तरफ पहल के रूप में इसके बाद आयोजित 1948 में नई दिल्ली सम्मेलन 1954 में कोलम्बो सम्मेलन, 1955 में बांडुग सम्मलेन तथा 1961 में नई दिल्ली में अर्थशास्त्रियों के सम्मेलन के आयोजन को माना जा सकता है, लेकिन वैधानिक रूप से इस तरफ कोई सफलता हासिल नहीं की जा सकी ।[9]

1961 में "एशिया और सुदूरपूर्व के लिये आर्थिक आयोग" (ई.सी.ए.एफ.ई.) सम्मेलन में आर्थिक सहयोग के बारे में विचार प्रकट किया गया। 1961 में ही इस आर्थिक आयोग के कार्यवाहक सचिव यन्यू भारत के के0बी0 लाल, थाईलैण्ड के लुआंगथावी तथा जापान के प्रतिनिधि साबुरोओकिता "एशिया में क्षत्रीय सहयोग" की स्थापना हेतु बैंकाक में मिले। इस समय साबुरोओकिता ने विचार प्रकट करते हुये कहा था कि "यूरोपीय आर्थिक समुदाय की भांति एशिया में भी क्षेत्रीय सहयोग की रचना की जानी चाहिये।[10] लेकिन जैसा कि भारतीय अर्थ शास्त्री श्री हरिनाथ सिंह और डॉ0 आर0एस0 निगम का मानना है कि विभिन्न राजनैतिक व्यवस्थाओं, प्रतिस्पर्धात्मक तथा बाह्य शक्तियों पर इन राष्ट्रों की निर्भरता के कारण "एशियाई संयुक्त बाजार" की रचना असफल रही।[11]

1962 में लिम क्वे बो ने कहा कि दक्षिण एशिया के राष्ट्र (भारत, नेपाल, श्रीलंका, पाकिस्तान, अफगानिस्तान एवं ईरान) आपसी सहयोग की स्थापना कर सकते हैं। जापानी अर्थशास्त्री युची नोदा तथा आस्ट्रेलियाई राजनीतिज्ञ लार्ड कैजी ने "एशियन कॉमन मार्केट" की स्थापना को आवश्यक बताया। लेकिन दिसम्बर 1962 में ई.सी.ए.एफ.ई. की विशेष मंत्रिस्तरीय बैठक में इस विचार को रद्द करते हुये कहा गया कि -"अधिकांश एशियाई राष्ट्रों में पूरक अर्थव्यवस्था न होने के स्थान पर प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था के कारण एशियन कॉमन मार्केट का प्रस्ताव अव्यावहारिक है।"[12]

पाकिस्तान के पत्रकार जफर इकबाल ने इस बारे में लिखा कि "सहायता प्रदान करने वाले राष्ट्र इसे कभी नहीं स्वीकार करेंगे। एशियाई राष्ट्रों की अविकसितता, आर्थिक कमजोरी, खाद्य समस्या से ग्रस्त विशाल जनसंख्या गरीबी और विभिन्न विचारधाराओं के अनूठे संगम के कारण यह एक कल्पना एवं सपना ही होगा।[13] सितम्बर 1967 में भारत की स्व0 प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरागांधी की कोलम्बो यात्रा के दौरान श्रीलंका के

प्रधानमंत्री श्री डडले सेनानायके के साथ विचार-विमर्श के समय दोनों नेताओं ने आर्थिक सहयोग हेतु क्षेत्रीय संगठन की आवश्यकता प्रकट की थी । श्रीमती इंदिरा गांधी इस समय तंजौर जिले में धान की ताइवान किस्म विकसित करने और लुधियाना में गेहूँ की विकसित किस्म पैदा करने पर सहमत हुयी थी तथा श्रीलंका ने कृषि, सिंचाई और ऊर्जा के क्षेत्र में सूचनाओं के आदान-प्रदान को स्वीकृति प्रदान की थी । इस समय दोनों नेताओं ने विचार प्रगट करते हुये कहा था कि यदि इस सहयोग का दक्षिण एशिया के क्षेत्र में सामान्यीकरण हो जाये तो इन क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त की जा सकती है ।[14]

दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग की संभावनायें एवं अभिकल्पना :-

इस पृष्ठभूमि में 'दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग' की स्थापना हेतु सर्वप्रथम व्यक्तिगत रूप से 1977 में बांग्लादेश के स्व0 राष्ट्रपति जनरल जिला उर रहमान ने विभिन्न दक्षिण एशियाई राष्ट्रों की यात्रायें की तथा विभिन्न अंतरराष्ट्रीय मंचों पर सक्रिय भूमिका अदा की । उन्होंने 18 दिसम्बर, 1977 को नेपाल की द्वि दिवसीय यात्रा के दौरान सर्वप्रथम घोषित किया कि सिंचाई ऊर्जा एवं शक्ति, नदी, परिवहन तथा बाढ़ नियन्त्रण के क्षेत्र में क्षेत्रीय सहयोग की स्थापना करके आपसी लाभ उठाया जा सकता है ।[15]

इसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु राष्ट्रपति जिया उर रहमान ने 1979 में भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका की यात्रायें की । इससे पूर्व सिडनी राष्ट्र-मंडल सम्मेलन, लुसाका राष्ट्रमंडल सम्मेलन और हवाना निर्गुट सम्मेलन में अनौपचारिक रूप से दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग की स्थापना हेतु आवाज उठायी । बांग्लादेश के तत्कालीन विदेश मंत्री श्री शमशुल हक ने भी दक्षिण एशियाई राष्ट्रों की यात्रायें विचार विमर्श हेतु की ।[16]

राजनैतिक मतभेदों के कारण दक्षिण एशिया में 1978 तक क्षेत्रीय सहयोग हेतु सरकारी स्तर पर कोई ठोस कदम नही उठाया जा सका, लेकिन सितम्बर 1978 में गैर सरकारी स्तर पर श्रीलंका की राजधानी कोलम्बो में एक शोध संस्थान "मार्गा इन्स्टीट्यूट" में खोला गया, जिसको "कमेटी ऑन स्टडीज फार कॉआपरेशन इन डवलपमेन्ट इन साउथ एशिया" (सी.एस.सी.डी.) नाम दिया गया । इसकी परामर्श दात्री समिति ने निम्न बातों पर निश्चय प्रकट किया कि -

(1) सहयोगी शोध द्वारा सहयोग के विभिन्न क्षेत्रों की खोज की जाये ।

(2) इसका रूप आर्थिक हो, व्यापार वृद्धि, पूरक उत्पादन का विकास तथा टूरिज्म, बीमा, शिपिंग और वित्तीय मामलों में आर्थिक आदान-प्रदान की व्यवस्था की जाये ।

(3) क्षेत्र में सामूहिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया जाये ।

इसमें बांग्लादेश, भारत, नेपाल, पाकिस्तान, श्रीलंका और मालदीव छः राष्ट्रों के विद्वानों ने भाग लिया तथा 12 क्षेत्र शोध के लिये चुने गये ।[17]

सितम्बर 1979 में "बीएस.सी.डी." की तीसरी सेमिनार नेपाल में आयोजित की गयी, जिसमें तीन विषयों पर अध्ययन किये जाने पर सहमति हुयी -

(1) राष्ट्रीय और क्षेत्रीय विकास हेतु यातायात और संचार व्यवस्था को बढ़ावा ।

(2) क्षेत्रीय सहयोग हेतु हिमालय से प्राप्त स्त्रोतों का विकास एवं राष्ट्रीय विकास हेतु पानी, ऊर्जा, जंगलों एंव खनिज स्त्रोतों का विदोहन तथा वातावरण का संरक्षण ,

(3) क्षेत्रीय सहयोग हेतु समुद्री स्त्रोतों (मछली, ऊर्जा, खनिज पदार्थ आदि) का विकास ।

इसी प्रकार अंकटाड की मई 1979 में मनीला में आयोजित पाँचवी बैठक में विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था में सुधार हेतु क्षेत्रीय सहयोग की आवश्यकता प्रकट की गयी । इसमें राज्य प्रशिक्षण संस्थानों के मध्य सहयोग, बहुराष्ट्रीय बाजार व्यवस्था, क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग, क्षेत्रीय साख की व्यवस्था, तकनीकी के आदान-प्रदान यातायात व्यवस्था बीमा योजना, बहु राष्ट्रीय उत्पादन संस्था, विकासशील राष्ट्रों के मध्य व्यापार को वरीयता आदि महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये गये । [18]

"सी०एस०सी०डी०" ने शोध हेतु निम्न विषयों पर सहमति प्रकट की - क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग, आयात-निर्यात व्यवस्था, व्यापार वृद्धि, सांस्कृति आदान-प्रदान, आपसी समझ में वृद्धि, भुगतान व्यवस्था, वित्तीय प्रबन्ध, व्यापार वृद्धि, वितरण एवं बाजार प्रणाली, साख सुविधा, विभिन्न सरकारों के मध्य वार्तायें, सामूहिक आत्मनिर्भरता एंव पूरकता में बढोतरी, यातायात एवं संचार सुविधा, मानवीय शक्ति और रोजगार नीतियां, ग्रामीण औद्योगिकीकरण, टूरिज्म, जनसंख्या समस्यायें, तकनीकी आदान-प्रदान आदि । [19]

इस प्रकार 2 मई, 1980 को राष्ट्रपति जिया उर रहमान द्वारा उठाये गये ठोस महत्त्वपूर्ण एंव औपचारिक कदम से पूर्व भी क्षेत्रीय सहयोग की तरफ कई कदम उठाये जा चुके थे, लेकिनराष्ट्रपति जिया के सक्रिय रुख अपनाये जाने के कारण दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग की स्थापना का श्रेय उन्होंने अपने सिर बांधकर ऐतिहासिक स्थान प्राप्त कर लिया ।

दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग की तरफ 1981 का वर्ष मील का पत्थर इस मायने में साबित हुआ कि इस वर्ष सर्वप्रथम कोलम्बो में सातों राष्ट्रो के विदेश सचिवों ने एक मंच पर एकत्र होकर क्षेत्रीय सहयोग की स्थापना हेतु सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया ।[20]

सार्क की स्थापना में विलम्ब के कारण :

(1) ब्रिटिश उपनिवेशवाद की विरासतें :-

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद दक्षिण एशिया के सभी राष्ट्र आपसी द्वेष, शंका एवं विवादों से ग्रस्त रहे है । ब्रिटिश उपनिवेशवाद की विरासतें राजनीतिक, आर्थिक मतभेदों एवं टकरावों के कारण इन राष्ट्रों के मध्य सहयोग का विकास 1980 तक संभव नहीं हो सका । बांग्लादेश के विदेशमंत्री हुमायूं रशीद चौधरी का मानना है कि "ब्रिटेन की फूट डालो, राज करो" की नीति के कारण दक्षिण एशिया के राष्ट्र आज भी संघर्षरत है ।[21] बी०एच०फारमर के अनुसार, दक्षिण एशिया के लोग काफी असमानता रखते हैं । धर्म, जाति, सामाजिक विभिन्नता, बाह्य शक्तियों के हस्तक्षेप एवं ब्रिटिश काल की विरासतों के कारण इन राष्ट्रों के मध्य आपसी विवाद एवं संघर्ष देखने को मिलते हैं । इन राष्ट्रों के समक्ष राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने की प्रमुख समस्या रही है, फारमर ने दक्षिण एशिया को बहुसंख्यक एवं अल्प संख्यकों के सम्बन्धों के अध्ययन की प्रयोगशाला मानते हुये कहा कि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया के कारण संघर्षरत राष्ट्रों में क्षेत्रीय सहयोग का विकास नहीं किया जा सका है ।[22]

दक्षिण एशिया के राष्ट्रों के मध्य द्विपक्षीय विवादों एवं संघर्षों ने भ्रम, शंका एवं भय का वातावरण पैदा किया है । भारत और पाकिस्तान के मध्य कश्मीर को लेकर तीन युद्ध लड़े जा चुके है, भारत और श्रीलंका के मध्य भारतीय तमिलों की नागरिकता का मसला, श्रीलंका के तमिलों द्वारा पृथक राज्य की मांग तथा समुद्री सीमा विवाद आदि मुख्य रहे है। बांग्लादेश और भारत के मध्य न्यूमूर द्वीप, सीमा विवाद, फरक्का जल विवाद, तीन बीघा एवं असम में बांग्लादेश के घुसपेठियों को रोकने के लिये कटीले तारों की लगाई जाने वाली बाढ़ प्रमुख मुद्दे रहे है । नेपाल द्वारा शांति क्षेत्र बनाये जाने की घोषणा, 1950 की : भारत - नेपाल संधि में परिवर्तन की मांग एवं नेपाल द्वारा पृथक पहचान की मांग, भारत विरोधी प्रचार को जन्म देने वाले प्रमुख कारण रहे है। भूटान भी भारत के प्रभुत्व के प्रति भयभीत रहा है । 1949 की भूटान-भारत शांति एवं मित्रता संधि में परिवर्तन की मांग उठायी जाने लगी है ।

द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त (टूनेशन थ्योरी) तथा भारत द्वारा बांग्लादेश की पृथकता एवं कश्मीर विवाद को पाकिस्तान गांठ बांधे हुये है, वह किसी भी ऐसे कदम को उठाने में हिचकिचाता रहा है, जिससे भारत के प्रभाव में वृद्धि होती हो ।

(2) भारत का विशाल आकार :

क्षेत्रीय सहयोग की रचना के मार्ग में एक महत्वपूर्ण बाधा भारत का प्रभुत्वशाली विशाल रूप भी प्रमुख रूप से रहा है । भारत क्षेत्र की दृष्टि से पाकिस्तान से 4, बांग्लादेश से 22, नेपाल से 23, श्रीलंका से 50 और भूटान से 50 गुणा अधिक है । जनसंख्या की दृष्टि से भारत पाकिस्तान से 8.5, बांग्लादेश से 7.5, नेपाल से 50, श्रीलंका से 47.5 तथा भूटान से 517 गुणा अधिक है ।[23]

दक्षिण एशिया के राष्ट्रों की जनसंख्या एवं क्षेत्र की निम्न सारिणी द्वारा स्पष्ट है ।[24]

राष्ट्र	जनसंख्या (दस लाख) 1985 के मध्य	क्षेत्र (हजार प्रति वर्ग कि0मी0
बांग्लादेश	101.5	144
भूटान	1.4	46.5
भारत	762.2	3288
मालदीव	0.15	0.29
नेपाल	0.17	147
पाकिस्तान	99.2	804
श्रीलंका	16.4	65.6

सैनिक दृष्टि से भारत विश्व में चौथा बड़ा राष्ट्र है तथा औद्योगिक दृष्टि से भारत विश्व का दसवां विकसित राष्ट्र है । [24] सैनिक दृष्टि से भारत ,पाकिस्तान से 2.5, बांग्लादेश से 1.5, नेपाल से 45 तथा श्रीलंका से 67.5 गुणा है । 1984 में भारत की कुल सैनिक संख्या 11,20,000 थी जबकि पाकिस्तान की 478000, नेपाल की 25,000, बांग्लादेश की 81300 तथा श्रीलंका की 16,560 थी ।[26]

विश्व की 3.30 प्रतिशत भूमि दक्षिण एशिया में है, तथा 22,5% जनसंख्या निवास करती है । दक्षिण एशिया के कुल क्षेत्र का 72% भाग भारत में है । दक्षिण एशिया की एक बिलियन आबादी का 77% भाग भारत में निवास करता है । यहां के सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी0एन0पी0) में भारत की 78% सहभागिता है । 90% कोयला पैट्रोलियम ,क्रोमियम तथा नमक, 81% जंगल ,69% सिंचित भूमि ,84% खेती योग्य भूमि ,100% खनिज स्त्रोत (यूरेनियम , कच्चा लोहा, बाक्साइट, मैग्नीज, चांदी, टंगस्टन, जिंक, हीरे, ताबां, सेना आदि) भारत में है ।[27]

इस प्रकार भारत की विशाल एंव प्रभावशाली सहभागिता के कारण दक्षिण एशिया के अन्य राष्ट्र क्षेत्रीय सहयोग की किसी भी पहल के प्रति यह डर पैदा करते रहे है कि इसका सीधा अर्थ भारत की अधीनता स्वीकार करना होगा ।

(3) प्रतिस्पर्धात्मक अर्थ व्यवस्था :

क्षेत्रीय सहयोग के मार्ग में तीसरी प्रमुख बाधा दक्षिण एशिया के राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था का पूरक न होकर प्रतिस्पर्धात्मक होना रहा है । दक्षिण एशिया के अधिकांश राष्ट्र एक जैसी वस्तुओं का उत्पादन करते है। जैसे चाय, काफी, जूट, चीनी, चावल, गेहूं, चमडा, मछली, रत्न, आभूषण, शराब, मसाले, मेवा, फल, कपास, खनिज, नारियल, रबर खाद्य तैल आदि ।[28]

दक्षिण एशिया के राष्ट्रों द्वारा आयात-निर्यात वस्तुओं की इस सूची से भी स्पष्ट होती है :-

देश का नाम	आयात	निर्यात
(1) बंगलादेश	गोला बारूद, हथियार, कोयला, विद्युत सामान, रसायन, हल्का सूत, ऊन, विद्युत डीजल इंजन, मोटर एवं उनके पुर्जे, लोहा, स्टील, चिकित्सा सामान, साईकिल, टायर और ट्यूब, खनिज तेल एवं पेट्रोलियम तथा खाद्य तेल आदि ।	जूट एवं जूट का सामान, मछली, कागज चमडा, खाद, लाल मिर्च, रेशम, शीरा पान आदि
(2) भारत	खाद्यान, कच्ची ऊन, जूट, बस्ते के धागे खनिज तेल एवं पेट्रोलियम, रसायन, लोहा एवं स्टील, मशीनरी सवाज सामान, चिकित्सा सामान, कागज, कांच फोटो रील आदि ।	चाय, काफी, तम्बाकू, मसाले खाले, ऊन और जूट की बनी वस्तुयें, चीनी, खनिज, धातु, मूल्यवान रेल, चिकित्सा सामान, कांच की निर्मित वस्तुऐं इंजिनियरिंग वस्तुऐं रेल एवं सड़क वाहन फिल्म अरबि, बीयर, गलीचे
(3) नेपाल	मोटर एवं उनके पुर्जे, साईकिल, टायर व ट्यूब सिगरेट, मशीनरी, वस्त्र, सौदर्य प्रसाधन, विद्युत समान, फिल्म, तैयार भोजन, फर्नीचर, रसयान, मसाले खनिज तेल एवं पेट्रोलियम आदि ।	हथकरघा सामान, काजू, जूट की वस्तुऐं, धातु एवं चावल लालमिर्च, इलायची, सोठ, शहद, इगली, इमारती लकडी आदि ।

(4) पाकिस्तान	सुपारी, पान, वस्त्र या धागे खनिज तेल, मशीनरी एंव उनके पुर्जे, लोहा और स्टील, रसायन कागज, कोयला, विद्युत सामान आदि ।	कच्ची रूई, ऊन एवं ऊनी सामान, खाले तथा नमक, जिप्सम, नाइट्रेट आदि ।
(5) श्रीलंका	वस्त्र, खनिज तेल एवं पेट्रो-लियम, गेहूँ का आटा, मछली, चीनी, खाद, दूध, कोयला, कृषि सामान, मशीनरी एंव पुर्जे साईकिल, लोहा एवं स्टील, रसायन विद्युत एंव डीजल इंजन खाद्य तेल और वनस्पति, पाइप वैज्ञानिक औजार आदि ।	काफी, चाय, नारियल एवं नारियल तेल, रबर, पेंसिल सुपारी, खालें, खाद्य तेल, बहुमूल्य रत्न, इमारती लकड़ी, इमली आदि ।

इस प्रकार इस सूची से स्पष्ट है कि कुछ वस्तुओं का निर्यात एक से अधिक राष्ट्र करते है, जिससे आपस में सहयोग के स्थान पर प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा मिलता है । जैसे कि जूट एंव जूट के सामान का निर्यात बंगलादेश, भारत और नेपाल तीनों करते हैं । चाय, काफी और बहुमूल्य रत्नों का निर्यात भारत एंव श्री लंका करते है । मछली एंव चमड़े का निर्यात भारत एंव बंगलादेश लालमिर्च- बंगलादेश एंव नेपाल , रूई - भारत एवं पाकिस्तान, खालें- भारत एवं पाकिस्तान व श्रीलंका तथा इमली तथा इमारती लकड़ी का निर्यात श्रीलंका एवं नेपाल करते है । यह कारण है कि इनका आपसी व्यापार बहुत कम मात्रा में होता है । 1982 में आपसी निर्यात मात्र 440 मिलीयन डालर तथा आयात 438.5 मिलियक डालर का हुआ था, जो अत्यन्त अल्प कहा जा सकता है । [29]

4- बाह्य शक्तियों की भूमिका :

दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग की दिशा में एक अन्य महत्वपूर्ण बाधा बाह्य शक्तियों के दक्षिण एशियाई राष्ट्रो से सम्बन्ध एंव दक्षिण एशिया में महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा भी रही है । फलत: दक्षिण एशिया में संघर्ष और असुरक्षा की भावना व्यापक रूप से सदैव विद्यमान रही है । ऐसा कोई समय नही रहा जबकि दक्षिण एशिया के ।राष्ट्र आंतरिक विद्रोह, बिखराव एंव संघर्ष से ग्रसित न रहे हो । सुरक्षा की दृष्टि से भारत एक तरफ और अन्य पड़ोसी राष्ट्र दूसरी तरफ रहे है । भारत के वृहद रूप के प्रति डर पैदा करके पड़ोसी राष्ट्रो का शासक वर्ग अपनी सत्ता बचाता रहा है तथा भारत विरोधी प्रचार के माध्यम से देश की जनता में एकता का भाव पैदा करने की नीति से ग्रसित रहा है । जिससे आपस में संदेह, भ्रम एंव अविश्वास का भाव पैदा हुआ है ।[30]

भारत हमेशा बाह्य शक्तियों के हस्तक्षेप से दक्षिण एशिया को मुक्त रखने की नीति अपनाने का प्रयत्न करता रहा है । इसके विपरीत पड़ोसी राष्ट्र ।विशेष कर पाकिस्तान। बाह्य शक्तियों से सम्बन्ध मजबूत बनाते रहे है । पाकिस्तान की मान्यता है कि ऐसा न करने से भारत की स्थिति दक्षिण एशिया में महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली हो जायेगी । चीन एवं अमेरिका दक्षिण एशियम में शक्ति संतुलन की आड़ में पाकिस्तान को सैनिक एंव आर्थिक मदददेते रहे है । अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को 1979 तक "सीटो" एवं सैटो" जैसे सैनिक संगठनों के माध्यम से सुरक्षा प्रदान करना, भारत की सुरक्षा एंव संम्प्रभुता के लिये अत्यन्त चिंता का विषय बना रहा है । पाकिस्तान को अमेरिकी साज, सामान की सप्लाई तथा चीन द्वारा आणविक बम ।इस्लामिक बम । के निर्माण में सहयोग ने भारत की सुरक्षा पर एक प्रश्न चिन्ह लगा दिया है । [31]

बाह्य शक्तियों की होड का एक उदाहरण कश्मीर जैसा विवादग्रस्त मुद्दा माना जा सकता है । इस मुद्दे को महाशक्तियाँ यदा-कदा भड़काती रही हैं । इस मुद्दे पर जहां सोवियत रूस ने भारत का समर्थन किया है वहां अमेरिका एवं चीन पाकिस्तान का समर्थन करते रहे है । इस प्रकार दक्षिण एशिया महा-शक्तियों के संघर्ष का अखाड़ा बनकर रह गया है ।

भारत के विरुद्ध अन्य पड़ौसी राष्ट्र सुरक्षा की दृष्टि से अमेरिका, चीन एंव पश्चिमी शक्तियों की तरफ ताकते रहे है । श्रीलंका ने ट्रिंकोमाली पाकिस्तान में ग्वादेर, कराची तथा पेशावर में अमेरिकी सुरक्षा सेनाओं को सैनिक छूट प्रदान करके पुनः एक बार महाशक्तियों को दक्षिण एशिया में हस्तक्षेप को बढ़ावा दिया है । "अमेरिका-पाक-चीन" धुरी से रक्षा हेतु भारत और रूस मित्रता की ओर अग्रसर हुये है । परिणामस्वरूप भारत-पाक सम्बन्धों में सुधार की संभावनायें लुप्त सी होती जा रही हैं ।[32]

पड़ौसी राष्ट्र भारत के प्रति डर पैदा करते हुये उस पर "बड़े भाई वाला" दृष्टिकोण अपनाने का आरोप लगाकर उसे ब्लेकमेल" करते रहे है । दूसरी तरफ भारत पडौसी राष्ट्रों द्वारा उसके विरुद्ध गुटबद्ध हो जाने की संभावना से अपनी स्थिरता, सुरक्षा एंव अखंडता को चुनौती महसूस करता रहा है ।[33]

भारत अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा शांतिपूर्ण तरीके से द्विपक्षीय सम्बन्धों के माध्यम से महसूस करता रहा है, जबकि भारत की वर्तमान प्रभावशाली शक्ति के विरुद्ध पडौसी राष्ट्र अमेरिका एंव चीन के हितों के मोहरे बने हुये हैं । ये दोनों बाह्य शक्तियाँ दक्षिण एशिया में "आतंक संतुलन" के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रही है । इस तरह महाशक्तियों से सम्बन्धों को लेकर भी दक्षिण एशिया के राष्ट्र एक दूसरे के प्रति संदेहशील रहे हैं ।

दक्षिण एशिया के राष्ट्र आपस में यह भ्रमपाले हुये है कि उनकी राष्ट्रीय अखंडता के विरुद्ध अस्थिरता फैलाने में उनके पड़ौसी राष्ट्र जिम्मेदार है । भारत के विरुद्ध खालिस्तानी आतंकवादियों को पाकिस्तानी प्रशिक्षण एंव हथियार देना, बंगला देश की पृथकता के संदर्भ में भारत की भूमिका तथा

बलूची एवं पठानों के प्रति भारतीय समर्थन का पाकिस्तान द्वारा ढिंढोरा पीटना, श्रीलंका द्वारा तामिलनाडु में तमिल आतंकवादियों को प्रशिक्षण दिये जाने, असमें में बंगलादेशियों की घुसपैठ, नागा एंव मिजो छापामारों को चिटगाँव में प्रशिक्षण तथा चीन एंव पाकिस्तान द्वारा इनको समर्थन, दक्षिण एशिया के राष्ट्रों के बीच संदेह एंव अविश्वास के कारण रहे है । [34]

हिंद महासागर की सामरिक एंव महत्वपूर्ण स्थिति के कारण महा-शक्तियां दक्षिण एशिया में अपना हित साधने में लगी हुयी है । [35] "अल्फ्रेड महान" का मानना है कि -"यदि कोई राष्ट्र समुद्रों पर आधिपत्य स्थापित कर लेता है, जो कि विश्व का दो -तिहाई भाग हैं तो शेष एक-तिहाई भाग पर आधिपत्य जमाना अत्यन्त आसान हो जायेगा ।" अल्फ्रेड महान के अनुसार, "हिन्दमहासागर सातों महासागरों की चाबी है । 21वीं सदी में विश्व का भाग्य इसके पानी पर तय किया जायेगा ।" हिन्दमहासागर में दक्षिण एशिया की स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।[36]

हिन्दमहासागर में महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा एंव आकर्षण के कारण इसमें तेल की संभावनायें, वायु एंव जलमार्ग की सुविधा तथा इससे सटे राष्ट्रों में बड़े पैमाने पर खनिजों का भंडार रहे हैं । विश्व की 90% रबर, 70% टिन, 79% सोना, 28% मैग्नीज, 32% क्रोमियम, 16% कच्चा लोहा , 11.5% आ टंगस्टन, 11% निकल, 10% जिंक तथा यूरेनियम, थोरियम एवं टिटानियम जैसे सामरिक खनिजों के अथाह भंडार इससे सटे राष्ट्रों में विद्यमान हैं । [37]

यहाँ अमेरिका की 3.5 बिलियन डालर अमेरिकी पूंजी तेल क्षेत्र में तथा 10 बिलीयन डालर अन्य क्षेत्रों में लगी हुयी है । खाड़ी देशों से 50% खनिज तेल पश्चिमी यूरोप, 90% जापान और 65% आस्ट्रेलिया को हिन्दमहासागर के रास्ते से ही जाता है । यहाँ अमेरिकी हथियारों एंव निर्मित वस्तुओं की खपत हेतु विशाल बाजार मौजूद है। इन सभी कारणों से महाशक्तियां हिन्द-

महासागर में प्रभुत्व स्थापित करने की होड में लगी हुयी है। सोवियत रूस एंव भारत, डियागोगार्सिया में अमेरिकी नौ-सैनिक अड्डे तथा बांग्लादेश पाकिस्तान और श्रीलंका द्वारा अड्डे स्थापित करने की छूट से चिंतित हैं तो दूसरी तरफ "अमेरिका-चीन एंव पाकिस्तान, भारत - रूस मित्रता तथा सोवियत रूस द्वारा हिन्द महासागर एंव अरबसागर में व्यापारिक रास्ते की खोज की पहल से परेशान है । [38]

इस प्रकार महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा यहां संकटपूर्ण स्थिति की रचना करने या शीतयुद्ध को जन्म देने की महत्वपूर्ण कड़ी रही है । श्री के0 एम0 पनिक्कर ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि-इतिहास इस बात का गवाह है कि हिन्द-महासागर पर जिस महाशक्ति का अधिकार हुआ है, वही भारत पर प्रभुत्व जमाने में सफल हुयी है ।" इस प्रकार भारत का प्रमुख राष्ट्रीय हित हिन्दमहासागर को बाह्यशक्तियों के हस्तक्षेप तथा प्रतिस्पर्धा से मुक्त रखना रहा है । इसी संदर्भ में भारत ने हिन्दमहासागर को शांति क्षेत्र बनाये जाने के श्रीलंका के प्रस्ताव का मजबूती से समर्थन किया है ।

चीन की मुख्य नीति भारत के विरूद्ध दक्षिण एशिया के अन्य राष्ट्रों को एक जुट करके उसे कमजोर बनाने की रही है, जिससे उसके एशिया में नेतृत्व के सपने को साकार रूप प्रदान करने के मार्ग में कोई बाधा न डाले सके । इसका एक कारण यह भी है कि साम्यवादी चीन, भारत से सटी दक्षिणी सीमा पर विवाद ग्रस्त स्थिति में अपनी स्थिति को सुदृढ़ कर लेना चाहता है । इस प्रयत्न में कहीं तक वह इस मायने में सफल भी हुआ है कि पाकिस्तानी सहयोग के फलस्वरूप काराकोरम सड़क का निर्माण पूर्ण किया जा चुका है । इससे भारत की उत्तरी सीमा को स्थायी खतरा पैदा हुआ है । इसकी रचना में पाकिस्तान की अत्यन्त महत्वपूर्ण सहभागिता रही है ।

इस प्रकार दक्षिण एशिया के राष्ट्रों ने आपसी संदेह, अविश्वास एंव संघर्षों के कारण जनकल्याण कार्यों के खर्चों में कटौती करके रक्षा व्यय पर काफी खर्च किया है । इनकी अर्थव्यवस्था पर इस अतिरिक्त बोझ ने उन्हें महाशक्तियों एंव सम्पन्न राष्ट्रों की मदद का मोहताज बना दिया है । इन्ही कारणों के फलस्वरूप दक्षिण एशिया को एशिया में "संकट की धुरी" माना जाता रहा है । [39]

1983 में दक्षिण एशिया में सैनिक खर्च इस प्रकार था -

राष्ट्र	कुल खर्च मि0 डालर में	प्रति व्यक्ति खर्च	सरकारी खर्च का प्रतिशत	जी0डी0पी/ जी0एन0पी0 का प्रतिशत
बंगलादेश	240	3	23.6	2
भारत	6476	9	18.1	3.4
नेपाल	34	2	5.0	1.4
पाकिस्तान	1986	22	25.8	6.9
श्रीलंका	77	5?	6.9	1.5

इस सारणी से यह स्पष्ट है कि दक्षिण एशिया में सैन्य सुरक्षा व्यवस्था पर काफी खर्च किया जाता है, जिससे इन राष्ट्रों को विकास कार्यों के खर्च में कटौती करनी पड़ती है । तथा वाह्य शक्तियों पर निर्भरता बढ़ती जा रही है । [40]

15। बहु-पक्षीय समाज एंव द्वि-पक्षीय विवाद :

क्षेत्रीय सहयोग के मार्ग में एक अन्य बाधा दक्षिण एशिया के राष्ट्रों में बहुजातीय, बहुधार्मिक एवं बहुभाषायी समाज का विद्यमान होना रहा है । इन देशों को धार्मिक रूप से तीन भागों में बांटा जा सकता है -

(1) हिन्दू बहुल - भारत एंव नेपाल ।
(2) मुस्लिम बहुल - पाकिस्तान, बांग्लादेश मालदीव ।
(3) बौद्ध राष्ट्र - श्रीलंका एंव भूटान ।[41]

कई भाषायें भी दक्षिण एशिया में समान रूप से बोली जाती है । जैसे - हिन्दी, तमिल, उर्दू, पंजाबी, सिन्धी, बंगाली आदि ।[42]

दक्षिण एशिया के यह विशेषता रही है कि एक देश की अल्पसंख्यक आबादी के साथ अगर कुछ अनहोनी घटना होती है तो दूसरे पड़ोसी राष्ट्र पर इसका सीधा असर होता है । जैसे श्रीलंका की तमिल समस्या के विरोध में तमिलनाडु में जन आन्दोलन द्वारा भारतीय असंतोष को प्रदर्शित करना ।

इस प्रकार एक राष्ट्र की आंतरिक समस्या से दूसरे राष्ट्र सामाजिक , आर्थिक, सांस्कृतिक एंव राजनैतिक कारणों से सीधे रूप में जुड़े होने के कारण इन राष्ट्रों द्वारा एक - दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप के आरोप प्रत्यारोप लगाये जाते रहे हैं । श्रीलंका की तमिल समस्या में भारत पर हस्तक्षेप का आरोप तथा खालिस्तानी आन्दोलन के सम्बन्ध में पाकिस्तानी हस्तक्षेप का आरोप इसके सटीक उदाहरण हैं । इससे आपसी विद्वेष के भाव में काफी वृद्धि हुयी है ।

इसी दृष्टि से अप्रैल 1981 में "सी.एस.सी.डी." की सातवी मीटिंग के समक्ष लाहौर में बोलते हुये पाकिस्तान के विदेशमंत्री आगाशाही ने कहा था कि "क्षेत्रीय स्तर पर राजनीतिक सहयोग का वातावरण सहायक नहीं है । अन्तर्क्षेत्रीय विवाद एंव असमानतायें, भूराजनैतिक चुनौतियां, विभिन्न प्रकार के झुकावों से परिपूर्ण विदेश नीतियां आकार, जनसंख्या, स्थिति एंव स्तर में असमानता आदि राष्ट्रीय एंव सामूहिक आत्मनिर्भरता के विकास में सहायक नहीं है ।[43]

16। विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थायें :

दक्षिण एशिया के राष्ट्रों में पाये जाने वाली विभिन्न प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं के कारण भी क्षेत्रीय सहयोग की तरफ कोई ठोस कदम नहीं उठाया जा सका था । भारत में संसदात्मक प्रजातन्त्र, श्रीलंका में अध्यक्षात्मक प्रजातन्त्र, पाकिस्तान और बांग्लादेश में सैनिक शासन तथा मालदीव में सर्वसत्तावादी एक दलीय अध्यक्षात्मक व्यवस्था देखने को मिलती है । [44]

पड़ौसी राष्ट्र भारत पर यह आरोप लगाते रहे हैं कि वह उनके देश में प्रजातन्त्र की स्थापना की आड़ में विद्रोहियों को प्रोत्साहित एंव मदद करता रहा है । पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल मोहम्मद जिया उल हक भारत द्वारा कुमारी बेनजीर भुट्टों एंव "लोकतन्त्र बहाली आंदोलन" के समर्थन को हिकारत की दृष्टि से देखते रहे है ।[45]

भारत की नीति क्षेत्र में शांति स्थायित्व एंव वस्तुस्थिति बनाये रखने की रही है, जबकि पड़ौसी राष्ट्र वर्तमान स्थिति में हर सम्भव उनके हित में परिवर्तन के आकांक्षी रहे है ।

इस तरह, उपरोक्त कारणों के फलस्वरूप दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग की रचना में काफी देरी हुयी ।

एस0यू0 कोडीकारों के अनुसार, दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग के मार्ग में प्रमुख रूप से दो बाधायें रही है :-

प्रथम :

क्षेत्रीय सहयोग प्रभावी एंव निर्भरता के सम्बन्धों की धारणा पर आधारित नहीं हो सकता । भारत की स्थिति दक्षिण एशिया में प्रभावी

शक्ति के रूप में है । इसके विस्तृत स्त्रोत, वैज्ञानिक और तकनीकी विकास, विशाल जनसंख्या एंव आकार छोटे-छोटे पड़ौसी राष्ट्रों में संदेह, डर तथा असुरक्षा पैदा करते रहे है ।

दूसरी मुख्य बाधा :

भारत - पाक समीकरण से सम्बन्धित रही है । दोनो राष्ट्र कश्मीर और कच्छ के रन पर क्षेत्रीय दावा करते रहे है । भारत-पाक युद्ध तथा भारत द्वारा बंगलादेश के स्वतन्त्रता संग्राम में पूर्ण मदद, पाकिस्तान द्वारा "सीटो" एंव "सैंटो" की सदस्यता, आणविक प्रतिस्पर्धा, असुरक्षा की भावना तथा एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में अस्थिरता को प्रोत्साहन देने जैसे कारणों के फलस्वरूप इनमें सहयोग की भावना विकसित नहीं हो सकी ।[46]

भारत के इस बृहद एवं प्रभावी स्थिति के कारण कोडीकारा ने भारत को दक्षिण एशिया का केन्द्रीय स्तम्भ माना है । लेकिन उनके अनुसार " यह स्तम्भ क्षेत्र को सहारा देने में अयोग्य रहा है , क्योंकि इसका क्षेत्रीय सुरक्षा का दृष्टिकोण पड़ौसी राष्ट्रो से काफी भिन्न है ।[47]

इस प्रकार इन उपरोक्त कारणों से 1980 तक दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग की संभावनायें नहीं के बराबर रही थी ।

REFERENCES

CHAPTER - I

1. Far Eastern Economic Review-Asia Year Book-1986 (Hongkong) pp. 82-84.

2. Imtiaz H.Bokhari"South Asian Regional Cooperation" Asian Survey (California)Vol.XXV No.4 April,1985, p.375.

3. S.P.Amarasingham- "Whither South Asia ?" Ed.Tribune (Colombo) Vol.25 No.40 May 2,1981 pp. 2-4.

4. Ministry of External Affairs-SARC: Meeeting of Foreign Ministers(New Delhi)1983 pp. 7-10.

5. Sun (Colombo), Dec.7,1985.

6. Rajaram Panda- "Regionalism as an approach to peace" Gandhi Marg (New Delhi) Vol.5 No.1 April,1983 pp. 45-46.

7. Chaitanya Mishra "Towars a Theoretical Framework of Regional Cooperation in South Asia" in Regional Cooperation and Development in South Asia Vol.II Bhabani Sen Gupta Ed.(New Delhi)1986 p.132.

8. Ministry of Information and Broadcasting, Government of India- Nehru's speeches (New Delhi) Vol.One 1949 pp. 300-303.

9. V.B.Raju- "Search for Regional Cooperation" Commerce (Bombay) Vol.143 No.3681 Annual Number 1981,pp.15-19.

10. M.V.Subba Rao- "Some views on an Asian Common Market" in South Asian Regional Cooperation K.Satyamurtye (Hyderabad)1982 p.26.

11. Ibid p.27.

12. Ibid pp.28-29.

13. Ibid pp. 29-30.

14. S.U.Kodikara- "South Asian Regional Cooperation": A Sri Lankan Perspective" in South Asian Regional Cooperation K.Satyamurtyed.(Hyderabad)1982 p.216.

15. Pot (Bangladesh Series) (New Delhi) Vol.II Part 239 Dec.20, 1977 p.1475.

TH-3159

V,4-9G-N80;1944V'N85

152M6

16. Asian Recorder (New Delhi) Vol.XXIV No.11,March 12-18, 1978 p. 14218.

17. S.R.Asirwatham- "A Review of some of Sri Lanka's Programme for South Asian Economic Cooperation" in South Asian Regional Cooperation K.Satyamurty Ed. (Hyderabad) 1982 p.61.

18. Ibid pp. 62-63.

19. Ibid pp. 63-67.

20. V.B.Raju-"Search for Regional Cooperation" Commerce Vol. 143 No. 3681 Annual Number 1981 pp. 15-19.

21. Pot (Bangladesh Series) Vol.X No.181 Sept.7,1985 p.1427.

22. B.H.Farmer - "An Introduction to South Asia (New York) 1983 pp. 1-3.

23. B.P.Rao- "South Asian Regional Cooperation" A Trade view" in South Asian Regional Cooperation Ed.K.Satymurty Ed. (Hyderabad) 1982 pp. 33-40.

24. Far Eastern Economic Review- Asia Year book(Hongkong) 1986 pp. 6-7.

25. H.T.Parekh- "Regional Cooperation in South Asia" Public Affairs (Banglore) Vol. XXV No.4,April 1982 pp. 55-60.

26. S.D.Muni- "Defence and Development in South Asia" in Regional Cooperation and Development in South Asia Vol.I Ed.Bhavani Sen Gupta (New Delhi) 1986 pp.212-14.

27. Sridhar K.Khatri "South Asian Regional Cooperation" Asian Survey Vol.XXV No.4 April 1985 p.428.

28. J.D.Sethi "Extended Regional Cooperation" in South Asia: stability and Regional Cooperation M.S.Agwani Ed. (Chandigarh) 1983 p.52.

29. P.R.Bhatt- "Trade Flows in South Asia" India Quarterly Vol. XL. Nos. 3 & 4 July-Dec.84, p.289.

30. S.D.Muni- "Political Issues and South Asian Cooperation" Mainstream (New Delhi) Vol. XXIV Nos. 13 & 14 Nov.30, 1985 pp. 27-29.

31. Pratap Kapur- "SARC: Whither Regional Cooperation?" Democratic World (New Delhi) Vol.XII No.35, Aug.28,1983 pp. 6-7.

32. Imtiaz H.Bokhari- "South Asian Regional Cooperation" Asian Survey Vol. XXV No.4 April 1985 pp. 374-75.

33. Ibid.

34. Pratap Kapur- "SARC: Whither Regional Cooperation" Democratic World Vol. XII No.35, Aug.28,1983 pp.6-7.

35. Ativr Rahman- Political Economy of SARC (New Delhi) 1986 p.14.

36. Pran Chopra-Ed.From Mistrust to cooperation" in Future of South Asia (Macmillan-Delhi) 1986 pp.1-5.

37. Sridhar K.Khatri-"South Asian Regional Cooperation" Asian Survey Vol. XXV No.4 April 1985 pp. 426-28.

38. Surendra Chopra- "American Intrests in the Indian Ocean" in South Asia:stability and Regional Cooperation M.S. Agwani Ed.(Chandigarh) 1983 pp. 107-108.

39. S.D.Muni-"Defence and Development in South Asia" in Regional Cooperation and Development in South Asia Vol.I. Bhabani Sen Gupta Ed.(New Delhi)1986 p.172.

40. Far Eastern Economic Review-Asia Year Book-1986 (Hongkong) p.19.

41. Amit Gupta-Cultural Exchanges in South Asia-Strategic Analysis (New Delhi) Vol.VNo.9 Dec.82 pp. 513-24.

42. Urmila Prandis-Ethnic Tensions in South Asia-Impelications for Regional Cooperation in Regional Co-operation and Development in South Asia Vol.II Ed.Bhabani Sen Gupta (New Delhi) 1986 p.38.

43. Ibid-p.41.

44. Mohammad Ayoob-"SARC in comparative perspective" Asian Survey Vol.XXV No.4 April 1985 p.452.

45. Times of India (New Delhi) Sept.8,1986.

46. S.V.Kodikara-"South Asian Regional Cooperation" in South Asian Regional Cooperation K.Satyamurty Ed.(Hyderabad 1982 p.215.

47. Pran Chopra- Ed."From Mistrust to cooperation" in Future of South Asia (New Delhi)1986 pp. 9-15.

द्वितीय अध्याय

"दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग का प्रादुर्भाव"

पिछले अध्याय में हम यह देख चुके है कि दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग की स्थापना के मार्ग में किस प्रकार कठिनाईयां आई तथा जिस समय बंगलादेश के राष्ट्रपति जिया उर्रहमान ने सार्क की स्थापना का विचार व्यक्त किया उस समय इस क्षेत्र में इस प्रकार के संगठन को बनाने का विचार किसी भी राष्ट्र अथवा राजनेता के मस्तिस्क में नहीं आया था । दक्षिण एशिया के सभी राष्ट्र द्वि-पक्षीय विवाद, डर, द्वेष एवं आशंकाओं से ग्रस्त थे महाशक्तियां भी एक राष्ट्र को दूसरे के विरूद्ध भड़काकर अपने हित साधने में लगी थी ।[1] दक्षिण एशिया में इतने बड़े पैमाने पर व्याप्त आपसी अविश्वास, शंका एवं वैमनस्यता केबावजूद "दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग" का गठन कैसे संभव हुआ, यह एक विचारणीय प्रश्न है जिसका अध्यन इस अध्याय में करने का प्रयत्न किया गया है ।

इससे पूर्व कि दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग के प्रादुर्भाव के बारे में विचार किया जाये, भूमिका के रूप में दक्षिण एशिया क्षेत्र में सार्क के गठन से पूर्व जो प्रभावशाली परिवर्तन हुये उनका विवरण करना यहां आत्यावश्यक प्रतीत होता है । क्योंकि सार्क के गठन के मूल में यही कारण सार्थक सिद्ध हुये है ।

कुछ प्रमुख प्रभावात्मक राजनैतिक घटनाएं :-

1971 के बाद दक्षिण एशिया में राजनैतिक, आर्थिक एंव सामाजिक रूप से अत्यन्त महत्वपूर्ण परिवर्तन आये । 9 अगस्त, 1971 की भारत-रूस शांति एंवमित्रता संधि" तथा भारतीय सहयोग एंव रूसी समर्थन से पूर्वी

पाकिस्तान के बंगलादेश के रूप में उदय ने, भारत को इस क्षेत्र में एक प्रभाव शाली शक्ति के रूप में स्थापित किया । बंगलादेश के स्वतन्त्रता युद्ध में अमेरिकी नीति की पराजय ने पाकिस्तान को क्षेत्रीय अखण्डता एंव सुरक्षा के लिये चीन के साथ मित्रवत सम्बन्ध खोजने पर मजबूर कर दिया ।[2] चीन एवं अमेरिका का सहयोग, भारत एंव रूस के विरूद्ध शाक्ति संतुलन हेतु सामायिक आवश्यकता पाकिस्तान के लिये बन गया । इसी कारण पाकिस्तान ने चीन एंव अमेरिकी सहयोग की स्थापना में मध्यस्थता की नीति निभायी । इस प्रकार "चीन, पाक एंव अमेरिकी धुरी" का गठन हुआ ।[3]

इस तरह 1971 का "भारत - पाक युद्ध" चीन और अमेरिका की विदेशनीतियों को सबक सिखाने वाला तथा एक-दूसरे को नजदीक लाने वाला प्रेरणादायक युद्ध रहा । साम्यवादी चीन और पूंजीवादी अमेरिका (विचार-धाराओं के आधार पर एक-दूसरे के कट्टर विरोधी), दक्षिणी एशिया में भारत एंव रूस के प्रभाव को रोकने के लिये एक ही खेमें में जा बैठे । इसी उद्देश्य से अमेरिकी राष्ट्रपति निक्सन एंव हेनरी किसिंजर ने 1971 में चीन की यात्रायें की [4] । अप्रैल, 1971 में श्रीलंका में जे0वी0पी0 का मार्क्सवादी विद्रोह भी अमेरिका को चौकाने के लिये महत्वपूर्ण साबित हुआ । इस प्रकार अमेरिका को इस समय पूर्ण विश्वास हो गया था कि दक्षिण एशिया में उसके हितों की पूर्ति के लिये भारत से सम्बन्ध सुधारकर क्षेत्र में शांति एवं स्थायित्व के लिये कदम बढ़ाना आवश्यक है, अन्यथा सोवियत रूस के प्रभाव की दक्षिण एशिया में विस्तार की काफी संभावनायें हैं । इसी लिये राष्ट्रपति निक्सन ने घोषणा की कि अमेरिका दक्षिण एशिया में अपनी भूमिका सीमित रखेगा तथा सोवियत रूस एंव चीन को भी पाकिस्तान एंव भारत पर प्रभाव स्थापित करने की कोशिश नही करनी चाहिये ।[5]

अमेरिकी कांग्रेस में राष्ट्रपति निक्सन ने 13 मई 1973 को स्वीकार किया कि 1971 के संकट के बाद भारत एक नये विश्वास, उत्तर-दायित्व और शक्ति के साथ अभरकर सामने आया है । यह सच है कि इस राजनीतिक सत्यता पर ही दक्षिण एशिया का भविष्य जुड़ा हुआ है । इससे प्रमुख प्रश्न यह पैदा होता है कि भारत इस शक्ति का उपयोग कैसे करेगा ? भारत का एक बड़ी शक्ति के रूप में अमेरिका आदर करता है, उसकी कार्य-वाहियां अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर आवश्यक रूप से हमारे हितों को प्रभावित करेंगी ।[6] इसी कारण निक्सन ने भारत के साथ अन्य दक्षिण एशियाई राष्ट्रों के समानता, परस्पर निर्भरता एवं आपसी हितों पर आधारित सम्बन्धों के विकास की इच्छा व्यक्त की । बल्देव राज नय्यर ने इसे अमेरिका की भारत को स्वयं के गुट में शामिल करने की नीति की पहल बताया ।[7]

अमेरिका के दक्षिण एशियाई राष्ट्रों के विशेषज्ञ हावर्ड शेफर ने भी "भारत को दक्षिण एशिया में एक महत्वपूर्ण शक्ति" घोषित किया ।[8] इस प्रकार 1971 में भारत को दक्षिण एशिया में एक बड़ी शक्ति के रूप में मान्यता मिली । इस युद्ध में अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को सम्पूर्ण दिल से मदद न दिये जाने के कारण उसने पश्चिमी एशिया एवं चीन के साथ सम्बन्धों के विकास में रूचि ली । पाकिस्तान भी 1972 के शिमला समझौते के द्वारा भारत को एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में मान्यता को स्वीकृति प्रदान कर दी । किसिंजर एवं निक्सन द्वारा भारत की महत्वपूर्ण शक्ति को मान्यता से उत्पन्न परेशानियों के हल हेतु चीन ने पाकिस्तान के साथ मिलकर नवीन शक्ति संतुलन की स्थापना को प्रमुखता दी ।

चीन के नेताओं ने पाकिस्तान को आणविक सहायता दिये जाने की तरफ कदम बढ़ाये । चीन का यह विश्वास था कि दक्षिण और दक्षिण पूर्व

एशिया में आणविक शक्ति सम्पन्न पाकिस्तान सोवियत प्रभाव को रोकने के लिये ~~अमेरिका~~ एक विश्वस्त राष्ट्र के रूप में कार्य करने में सक्षम होगा । इसके साथ-साथ ~~इससे~~ भारत को भी विभिन्न परेशानियाँ पैदा कर सकेगा । जो कि चीन की सही सोच थी । इस प्रकार चीन, पाकिस्तान एवं अमेरिका अपने एक ही लक्ष्य ।भारत एंव रूस के प्रभाव को विरोध। के लिये आर्थिक एवं सैनिक रूप से एक बद्ध हुये । [9]

18 मई 1974 को भारत ने पोखरण में परमाणु विस्फोट करके अपने प्रभाव एवं दबदबे में और कई गुना अधिक वृद्धि करली, इससे पड़ौसी राष्ट्रों में भय व्याप्त हो गया । [10] 16 मई 1975 को सिक्किम के 22 वें राज्य के रूप में भारत में विलय ने इस "आग में घी" का कार्य किया ।[11]

अमेरिका, चीन एंव पाकिस्तान ने इसे भारत की विस्तारवादी नीति कहकर चिंतित किया । चीन ने इस विलय को मान्यता प्रदान नहीं की तथा नेपाल एंव भूटान ने भयमिश्रित आश्चर्य व्यक्त किया । बांग्लादेश एंव श्रीलंका के दिमाग में भारतीय विस्तार का डर और मजबूत बना । चीन ने इस डर को पड़ौसी राज्यों में और अधिक उकसाकर उन्हें भारत के विरूद्ध एक जुट हो जाने की नीति को प्राथमिकता प्रदान की ।

सार्क राजनीतिक घटनाओं के परिपेक्ष्य में :-

1945 में नेहरू द्वारा श्रीलंका को भारतीय संघ में शामिल करने की पहल तथा नेपाल में किसी भी बाह्य शक्ति के हस्तक्षेप एंव गलत कार्यवाही को स्वयं के ऊपर आक्रमण की घोषणा, 1949 एंव 1950 की क्रमशः भूटान एंव नेपाल - भारत शांति एंव मित्रता की संधि के द्वारा विशेष सम्बन्धों की स्थापना, 1972 में भारत-बांग्लादेश मित्रता संधि एंव पाकिस्तान के विभाजन

से डरे राष्ट्रों के दिमाग में सिक्किम के विलय ने असुरक्षा का भाव मजबूत किया । भारत की इस कार्यवाही ने ब्रिटिश काल की विस्तारवादी नीति के अनुसार ही सुरक्षा की खोज का नाम, इन राष्ट्रों ने दिया ।[12]

नेपाल ने विश्व के दो बडे जनसंख्या प्रधान राष्ट्रों ।भारत एवं चीन) के बीच में बसे होने के कारण अज्जीयर्स निर्गुट सम्मलेन 1973 में नेपाल को शांति क्षेत्र बनाने का मुद्दा उठाया, जिसने 1975 में औपचारिक विचार का रूप धारण कर लिया । नेपाल एंव भूटान ने इस समय भारत से संधि में विशेष सम्बन्धों के विरूद्ध भी आवाज उठायी । श्रीलंका ने "हिन्दमहासागर को शांति क्षेत्र" बनाये जाने की घोषणा की तथा तमिल आतंकवादियों को भारत में प्रशिक्षण का आरोप लगाकर पश्चिमी शक्तियों से आर्थिक एंव सैनिक मदद प्राप्त करने के प्रयत्न तेज कर दिये ।[13]

15 अगस्त 1975 को बांग्लादेश में शेख मुजीब की हत्या के बाद भारत के प्रति डर पैदा हुआ । इस तरह भारत के विरूद्ध भयभीत राष्ट्रों ने बाह्यशक्तियों से सम्बन्धों को मजबूत बनाने की कोशिश शुरू कर दी, जिससे भारत की सुरक्षा पर एक प्रश्न चिन्ह लग गया ।

(अ) दक्षिण एशिया में राजनीतिक फेर बदल :

1977 में दक्षिण एशिया के राजनीतिक माहौल में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया । भारत में श्रीमती गांधी की पराजय के बाद श्री मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनतापार्टी की सरकार सतारूढ हुयी, पाकिस्तान में भुट्टो का तख्ता पलटकर जनरल जिया उल हक ने सत्ता हथिया ली, श्रीलंका में श्रीमती भंडार नायके के स्थान पर श्री जे0आर0जयवर्धने विजयी हुये, बांग्लादेश में जनरल जियाउर्रहमान सत्तारूढ हुये ।[14] इस तरह सर्वप्रथम दक्षिण एशिया के सभी राष्ट्रो में नेतृत्व अमेरिकी एंव पश्चिमी झुकाव रखने वाले व्यक्तियों के हाथों में आया , जो अपने पूर्व शासकों के प्रति व्यक्तिगत घृणा का भाव रखते थे । इस सबके परिणाम स्वरूप दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय स्तर पर आपसी समझ, विश्वास एंव सहयोग में वृद्धि हुयी ।

दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय भाव के इस अंकुरण को भाँपकर ही जनवरी 1978 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री कालधन तथा अमेरिकी राष्ट्रपति जिम्मीकार्टर ने इन राष्ट्रों की यात्रा की तथा दक्षिण एशिया में आपसी सहयोग, शांति एंव मित्रता को बढ़ावा देने के बारे में इच्छा व्यक्त करते हुये, क्षेत्रीय सहयोग हेतु बहु-पक्षीय योजनाओं को आर्थिक मदद दिये जाने की घोषणा की ।[15]

उन्होंने कहा कि"इस सहयोग में चीन भी सम्मिलित एंव सहयोगी भूमिका निभा सकता है । चीन के सम्बन्ध पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश एवं श्रीलंका से मधुर थे तथा भारत के विरुद्ध संतुलन स्थापित करने में समर्थ होने के कारण ऐसे विचार व्यक्त किये ।[16] राष्ट्रपति कार्टर ने सत्ता में आने के बाद दक्षिण एशिया में सुरक्षा एंव स्थायित्व के लिये भारत और पाकिस्तान के बीच अधिक सहयोग की आवश्यकता को महत्व प्रदान किया।[17]

लेकिन इससे पूर्व कि दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग को सिद्धान्त रूप प्रदान किया जाता, क्षेत्र में कई ऐसी महत्त्वपूर्ण घटनायें घट गयी जो इस सहयोग के मार्ग में उलझनपूर्ण साबित हुयी ।

ऽबऽ अफगानिस्तान"मरूसी हस्तक्षेप तथा सार्क- परिस्थितियाँ :-

1978 में ईरान के शाह के विरुद्ध खुमैनी क्रान्ति तथा दिसम्बर 1979 में अफगानिस्तान में सोवियत सेनाओं का प्रवेश, 1979 में पाकिस्तान द्वारा "सैन्टों" की सदस्यता का त्याग ऽ"सीटो"ऽ की सदस्यता पहले ही 1972 में छोड़ दी थी ऽ तथा इस्लामाबाद में अमेरिकी दूतावास पर हमला आदि घटनाओं के तेजी से दक्षिण एशिया में घटने के कारण अमेरिका अपने हितों की रक्षा के लिये ऊहापोह स्थिति में फंस गया ।[18] राष्ट्रपति के सुरक्षा सलाहकार ब्रजेजिस्की ने दक्षिण एशिया में अमेरिकी हितों की रक्षा के लिये नये सिरे से "अमेरिका-पाक-चीन धुरी" को मजबूत बनाने की सलाह दी।

अफगानिस्तान में रूसी हस्तक्षेप के कारण राष्ट्रपति कार्टर ने अपनी नीति में परिवर्तन करके पाकिस्तान को 400 मि0डालर की सैनिक सहायकता दिये जाने की घोषणा की । पाकिस्तान ने इसे "अल्प की संज्ञा देकर बडे पैमाने पर विरोध व्यक्त किया ।[19] जनरल जिया का कहना था कि "पाकिस्तान खाड़ी का पिछला दरवाजा है और यदि पिछला दरवाजा मजबूत नही है तो खाड़ी भी सुरक्षित नही रहेगी ।[20] राष्ट्रपति रीगन ने यहसहायता 3.2 वि0 डालर करदी । भारत ने अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को सैनिक साज सामान से सुसज्जित करने की नीति का जबरदस्त विरोध किया । यद्यपि सैनिक सहायता देते समय अमेरिका ने यहस्पष्ट कर दिया था कि इनका उपयोग भारत के विरूद्ध नहीं किया जायेगा, परन्तु इतिहास इस बात का गवाह है कि जब-जब पाकिस्तान को अत्याधुनिक सैनिक साज-सामान प्राप्त हुआ है तब-तब उसने भारत विरोध एंव उस पर आक्रमण की नीति को असलीजामा पहनाया है । सोवियत रूस के विरूद्ध शस्त्रों की सप्लाई की आड़ "सूरज को दीपक दिखाने" के समान है, पाकिस्तान-सोवियत रूस का मुकाबला "ऊंट और बकरी" जैसी साम्यता रखता है । इसका सीधा अर्थ अमेरिकी सैनिक सहायताकाउपयोग, भारत के विरूद्ध ही होने की पूरी संभावना से लगाया जा सकता है ।

अफगानिस्तानमेंरूसी हस्तक्षेप से दक्षिणएशिया में महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा में एक बार पुनः तेजी आ गयी । चीन के उप-प्रधानमंत्री डेंग झिआओलिंग ने अपनी 25 जनवरी 1979 को अमेरिकी यात्रा के दौरान सोवियत खतरे के विरूद्ध चेतावनी देते हुये कहा कि "सोवियत प्रभाव के विरूद्ध अमेरिका चीन नजदीकी सम्बन्ध सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।[21] अब जबकि अफगानिस्तान में सोवियत सेनाये आकर जम चुकी थी, उसके विरूद्ध "अमेरिका-पाक-चीन धुरी" में मजबूती आना स्वाभाविक था । सोवियत रूस के विरूद्ध दक्षिण एशिया के राष्ट्रों को उकसाकर संगठित करने के प्रयत्नों में तेजी लायी गयी । भारत विरोधी वातावरण पुनः दिखाई देने लगा । इसका कारण भारत का दृष्टिकोण, अन्य राष्ट्रों के दृष्टिकोण से भिन्न होना तथा जनवरी, 1980 में पुनः नाटकीय ढंग से श्रीमती गांधी का सत्तारूढ़ हो जाना था ।

यद्यपि तत्कालीन परिस्थितियों में चीन-पाक-अमेरिका धुरी" के विरुद्ध भारतीय हितों की रक्षा में सोवियत हस्तक्षेप लाभदायक सिद्ध हो सकता था, किन्तु दीर्घकालीन योजनाओं को ध्यान में रखते हुये यह भारत के हित में नहीं था क्योंकि ऐसी परिस्थितियों में क्षेत्र में महाशक्तियों की अनावश्यक प्रतिस्पर्धा एंव शस्त्रों की होड से क्षेत्रीय सुरक्षा के विरुद्ध खतरे की संभावनायें बढ़ने का भय था । अत: श्रीमती गांधी ने अफागानिस्तान से सोवियत सेनायें हटा लेने एंव समस्या का राजनैतिक हल खोजे जाने की इच्छा व्यक्त की थी । [22]

उपरोक्त परिस्थितियों में दक्षिणएशिया में अमेरिकी हितों की रक्षा के लिये क्षेत्रीय सहयोग एंव रूस के नजदीकी सम्बन्धों के विरुद्ध स्वाभाविक था । यह कदम चीन के हित में भी था क्योंकि उसके दक्षिणएशिया के अन्य राष्ट्रों से सम्बन्ध मधुर थे, जिनके माध्यम से वह भारत पर दबाव डालने में सफल हो सकता था । एक जुट होकर आपसी वैमनस्य को भुलाकर एक ही मंच पर एकत्रित होकर समस्याओं के समाधान की संभावनाओं के कारण क्षेत्रीय सहयोग का गठन दक्षिण एशिया के छोटे-छोटे राष्ट्रों के हित में भी था । राष्ट्रपति जिया उर रहमान ने इसी भाव को दृष्टि में रखते हुये कहा था कि सार्क की रचना के बाद" छोटे राष्ट्र बडे राष्ट्रों द्वारा तथा कमजोर राष्ट्र शक्तिशाली राष्ट्रो के द्वारा सताये नहीं जा सकेंगे ।[23]

(स) सार्क गठन : अमेरिकी विचार में वास्तविक अनुभूति :-

23 जनवरी 1980 को अमेरिकी राष्ट्रपति कार्टर ने "कार्टर सिद्धान्त" की घोषणा की जिसमें कहा गया कि -

"वर्तमान स्थिति में अमेरिका का लक्ष्य दक्षिण पूर्व एशिया में क्षेत्रीय सुरक्षा सहयोग की रचना होगा ।" इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु दक्षिण एशिया में राष्ट्रपति कार्टर ने तत्काल बाद उच्च स्तरीय दूत भेजे । [24]

जनवरी 1980 के अंत में ही भूतपूर्व अमेरिकी रक्षा सचिव "क्लार्क क्लिफोर्ड" को दक्षिण एशिया में सुरक्षा सम्बन्धी क्षेत्रीय दृष्टिकोण के विकास हेतु भारत और पाकिस्तान भेजा गया । [25]

फरवरी 1980 में उप राज्य सचिव "वारेन क्रिस्टोफर" तथा राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार जैड ब्रजेजिस्की को पाकिस्तान भेजा गया था । [26]इस समय अमेरिका ने क्षेत्र के सभी राष्ट्रों के मध्य समानता पर आधारित अच्छे सम्बन्धों के विकास की तथा बाह्य शक्तियों के हस्तक्षेप एवं प्रतिस्पर्धा से क्षेत्र को मुक्त रखने के लिये सहयोगपूर्वक कार्य करने की सलाह दी ।[27] इस प्रकार "दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग की रचना, ~~के मूल में~~ अमेरिका एवं चीन द्वारा अपने हितों की रक्षा हेतु भारत एवं सोवियत प्रभाव के विरुद्ध पहल का परिणाम थी । [28]

(2) आर्थिक कारण :-

सार्क की रचना का दूसरा महत्वपूर्ण कारण आर्थिक पिछड़ा, गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, जनसंख्या वृद्धि, खाद्यान्न की कमी, विदेशी ऋणों का बढ़ता बोझ, आदि को माना जा सकता है, जिनसे जूझने के लिये संयुक्त प्रयत्न की आवश्यकता थी, जो क्षेत्रीय सहयोग द्वारा ही संभव था ।

दक्षिण एशिया में विश्व की 20% जनसंख्या निवास करती है, जबकि भूमिक्षेत्र मात्र 3.3% ही है । खाद्यान का उत्पादन 12% ही होता है। विश्व के "सकल राष्ट्रीय उत्पाद" में मात्र 2% की दक्षिण एशिया की सहभागिता है । क्षेत्र में जनसंख्या घनत्व काफी मात्रा में है । विश्व में 30 व्यक्ति प्रति वर्ग कि0 मी0 के औसत में दक्षिण एशिया में 182 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि0मी0 है । यहाँ की प्रतिव्यक्ति औसत आय भी काफी कम है । 1976 में यह औसतन 148 अमेरिकी

डालर थी जबकि विश्व में यह औसत 1650 डालर था । [29]

जनसंख्या में 2.5% की दर से वार्षिक वृद्धि ने यहाँ विकट समस्यायें पैदा की है । 60 से 95% तक जनसंख्या के कृषि कार्यों में लगे होने के बावजूद खाद्यान में आत्मनिर्भरता प्राप्त नहीं की जा सकी है । कुपोषण एंव बीमारियों से यहाँ के लोग ग्रस्त है । शिक्षा के विकास का स्तर औसतन 32 से 40% तक ही है । औद्योगिक विकास यहाँ काफी कम मात्रा में हुआ है । भूमिहीन जनसंख्या, बेरोजगारी एवं खाद्यान्न की कमी यहा का चरित्र बन गयी है । औद्योगिक क्षेत्रों में मात्र 15% जनसंख्या को रोजगार प्राप्त है तथा औद्योगिक उत्पादन की जी डी पी में एक चौथाई ही सहभागिता है ।[30]

1983 में दक्षिण एशिया की स्थिति को निम्न तालिका द्वारा समझा जा सकता है :-

औद्योगिक सूचकांक - 1985[31]

	भारत	बंगलादेश	पाकिस्तान	श्रीलंका	नेपाल
जनसंख्या	762.2 मि0	101.5 मि0	99.2 मि0	16.4 मि0	17 मि0
सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी.एन.पी.)					
I प्रति व्यक्ति डालर में	193	135	360	340	145
II वार्षिक विकास दर 165 से 83 के मध्य %में	1.5	0.5	2.5	2.9	0.1
जी0डी0पी0 का %	16.3	6.0	15.8	14.5	4.5
कुल निर्यात में निर्मित वस्तुओं का प्रति0	42.2	60.9	54.3	3.8	-

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि 1965 से 83 के दौरान दक्षिण एशिया में औद्योगिक वस्तुओं के निर्माण में विकास की दर 0.1% से 2.9% तक ही रही, जो नाम मात्र थी । जी०डी०पी० में औद्योगिक उत्पादन की सहभागिता 4.5% से 16.3% के बीच रही । इस तरह औद्योगिक रूप से ये राष्ट्र काफी पिछड़े हुये थे ।

दक्षिण एशिया में नकारात्मक भुगतान संतुलन एंव विदेशी सहायता पर निर्भरता के कारण विदेशी ऋणों के बोझ में लगातार वृद्धि ने नव उपनिवेशवाद को जन्म दिया है । बांग्लादेश और नेपाल को 80 से 100% तक विकास बजट के लिए विदेशी सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है । 10% राष्ट्रीय आय विदेशी ऋणों की ब्याज अदायगी पर ही खर्च हो जाती है । नकारात्मक भुगतान संतुलन के कारण में राष्ट्र बाह्य शक्तियों के शिकंजे में जकडते जा रहे है । 1982 में यहां से 1300 मि० डालर का निर्यात हुआ जो विश्व निर्यात मात्र 0.8% भाग था जबकि 2600 मि० डालर का आयात हुआ जो विश्व का 1.5% था । इस प्रकार आयात-निर्यात का एकदम दुगुना था ।[32] 1982 में 1300 मि० डालर का भुगतान संतुलन दक्षिण एशिया में विपरीत रहा । इस विपरीत भुगतान संतुलन ने विदेशी ऋणों का बोझ लगातार इन राष्ट्रों के ऊपर बढ़ाया है, जो निम्न तालिका से स्पष्ट है -

1970 से 83 के बीच दक्षिण एशिया में विदेशी ऋण में वृद्धि-

*बिलियन डालर में *[33]

	1970	1983
भारत	7.9	21.2
पाकिस्तान	3	9.8
श्रीलंका	0.3	2.2
नेपाल	0.03	3.0
बंग्लादेश	-	4.4

1983 में दक्षिण एशिया पर लगभग 40 बिलियन डालर का विदेशी ऋण बकाया था । 1982 में दक्षिण एशिया का विदेशी व्यापार में 13218 मि0 डालर का भुगतान संतुलन नकारात्मक रहा । यह निम्न तालिका से स्पष्ट है-

दक्षिण एशिया का विदेशी व्यापार (मि0 डालर में)

देश	आयात	निर्यात	व्यापार संतुलन
बंगलादेश	768	2334	1566
भूटान	20	49	29
भारत	8559	16131	7571
मालदीव	12.3	113.3	101
नेपाल	87	400	313
पाकिस्तान	2374	5231	2857
श्रीलंका	1033	1813	780
दक्षिण एशिया	12853	26071	132118

34

स्त्रोत: आई, एम0एफ डायरेक्शन आफ ट्रेडस्टेटिस्टिक्स-1983

इस प्रकार विश्व व्यापार में सभी दक्षिण एशिया के राष्ट्र नकारात्मक भुगतान संतुलन की समस्या से पीड़ित रहे है ।

दक्षिण एशिया में आपसी व्यापार की स्थिति भी संतोषजनक नहीं थी । 1982 में आपसी निर्यात की मात्रा 440 मि० डालर मात्र थी जिसमें भारत की स्थिति को छोडकर सभी नकारात्मक भुगतान संतुलन के शिकार थे ।[35] यह निम्न तालिकाओं से स्पष्ट है -

दक्षिण एशिया में आपसी निर्यात की स्थिति - 1982 (मि०डालर में)[36]

राष्ट्र	भारत	पाकिस्तान	बंग्लादेश	श्रीलंका	नेपाल	कुल	विश्व में निर्या
पाकिस्तान	29.8	-	75.2	16.2	0.1	121.3	237399
बांग्लादेश	20.3	42.1	-	5.0	0.1	63.0	768
श्रीलंका	21.2	38.2	3.5	-	0.1	63.0	1033
नेपाल	12.3	0.7	0.50	-	-	13.50	48.8
भारत	-	2.8	40.0	66.0	72.0	180.0	8559
कुल	-	-	-	-	-	440.0	12792

दक्षिण एशिया में आपसी आयात की स्थिति-1982 (मि0 डालर में)

राष्ट्र	भारत	पाकिस्तान	बंग्लादेश	श्रीलंका	नेपाल	कुल	विश्व में आयात
पाकिस्तान	2.2	-	62.0	33.8	1.0	99.0	5231
बांग्लादेश	43.6	5.6	-	3.0	3.5	72.7	2334
श्रीलंका	72.9	17.6	0.2	-	-	90.7	1812
नेपाल	76.0	0	0.10	-	-	78.1	259
भारत	-	33.0	22.0	23.0	20.0	98.0	16131
कुल						438.5	25767

37

(स्त्रोत : आई0एम0एफ0 डायरेक्शन ऑफ ट्रेड, 1983)

सुरक्षा एंव सैनिक व्यवस्था पर दक्षिणएशिया के राष्ट्रों द्वारा काफी खर्च करने के कारण भी आर्थिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है । जो धन विकास कार्यों पर खर्च किया जाना चाहिये, वह सैनिक साज-सामान की खरीद पर खर्च कर दिया जाता है । [38] उदाहरण के लिये पाकिस्तान 1986-87 के दौरान रक्षा पर 2.415 अरब डालर खर्च करेगा, जो कुल बजट का 45% होगा । 2.94 अरब डालर की विकास योजनाओं का 55% विदेशी सहायता से पूरा किया जायेगा । भारत कुल बजट का 15% रक्षा व्यय पर खर्च करता है । विदेशी मुद्रा का भारत द्वारा 50% तथा पाकिस्तार द्वारा 75 से 80% तक व्यय सैनिक खर्च की अदायगी पर किया जाता है ।

1984 में नेपाल ने 116 मि0 डालर रक्षा पर खर्च किये, 1975 में यह खर्च मात्र 13.1 मि0 डालर था । बांग्लादेश में 1975 से 84 के बीच यह व्यय 95.3 मि0 डालर से बढ़कर 253 मि0 डालर हो गया । श्रीलंका में 1982 में यह व्यय । बिलियन रू0 था जो 1985 में बढ़कर 3.4 बिलियन रू0 हो गया । पाकिस्तान का 1985 में सैनिक खर्च 1152 मि0 डालर था जो 1984 में 2046 मि0 डालर तक बढ़ गया । भारत में दौरान 3681 मि0 डालर से बढ़कर यह खर्च 5693 मि0 डालर तक पहुंच गया ।

दक्षिण एशिया में शक्ति स्त्रोंतो का विदोहन भी साधनों के अभाव में काफी कम मात्रा में हो पाता है । इस प्रकार दक्षिण एशिया के राष्ट्र आर्थिक रूप से काफी कमजोर, पिछड़े हुये एंव अविकसित है । 1982 में प्रति व्यक्ति औसत आय के सर्वे में 126 देशों में से पाकिस्तान 107 नम्बर पर, श्रीलंका 113 नम्बर पर, भारत 114, नेपाल 124 तथा बांग्लादेश 125 नम्बर पर था । [39]

दक्षिण एशिया के देशों में केवल भारत स्वतन्त्र आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर है । स्वन्त्रता के बाद 500% से भी अधिक आर्थिक विकास यहां हुआ है । 1950-51 में जहां खाद्यान्न उत्पादन की मात्रा 5.50 करोड टन थी, उसे 1980-81 में आधुनिक खेती के माध्यम से 12.90 करोड टन तक 1980-81 में बढ़कर आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली । औद्योगिक रूप से भी वह विश्व का दसवां बड़ा राष्ट्र है । [40]

इस प्रकार आर्थिक विकास के लिये लालायित दक्षिण एशिया के अविकसित राष्ट्रों ने क्षेत्रीय सहयोग की स्थापना हेतु ब्रिटेन, अमेरिका एंव चीन द्वारा आर्थिक मदद की घोषणा का स्वागत किया ।

इस प्रकार गरीबी एंव आर्थिक पिछेडेपन को दूर करके लोगों के कल्याण एंव आर्थिक विकास हेतु क्षेत्रीय सहयोग की रचना की गयी ।

(3) सार्क गठन के अन्य कारण :-

दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग की रचना के अन्य कारणों में भौगोलिक निकटता, सांस्कृतिक एंव ऐतिहासिक समानता की सहयोगी भूमिका को भी गिनाया जा सकता है । दक्षिण एशिया में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक धार्मिक एंव भाषायी आधार पर एकता देखने को मिलती है । इस क्षेत्र के अधिकांश राष्ट्र एक जैसी शासन व्यवस्था के अधीन पश्चिमी शक्तियों के उपनिवेश रहे है । इसी को स्पष्ट करते हुये श्रीमती गांधी ने नई दिल्ली में प्रथम विदेशमंत्री सम्मेलन को सम्बोधित करते हुये कहा था कि " हम सातों राष्ट्र भौगोलिक रूप से पड़ोसी है तथा समान विरासते रखते है ।"[41] इससे पूर्व श्रीलंका के विदेशमंत्री ए0सी0हमीद ने अप्रेल 1981 में प्रथम विदेश सचिव स्तरीय मीटिंग को सम्बोधित करते हुये स्पष्ट किया था कि "हम आपस में काफी समानता रखते है । भौगोलिक रूप से हमारा क्षेत्र स्पष्ट रूप से परिभाषित है । सांस्कृतिक और ऐतिहासिक रूप से हम समान विरासतें रखते है । विश्व के सभी बड़े धर्मों के मानने वाले सहिष्णुता पूर्वक रहते हुये यहां देख जा सकते है । हमारी कला, साहित्य एंव संगीत समान है, तथा हम विकास की समान आवश्यकता महसूस करते हैं ।[42]

दक्षिण एशिया में जातीय गुटों को खीचने एंव धकेलने वाले दोनों ही तत्वों के रूप में स्पष्टदेखा जा सकता है ।[43] खीचने एंव नजदीक लाने वाले रूप में ये तत्व आपसी सहयोग को जातीय आधार पर मजबूत बनाते है, जैसे कि - श्रीलंका के उत्तरी क्षेत्रों के तमिल एंव दक्षिणी भारत के तमिलों के मध्य भाषा धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि के आधार पर काफी मात्रा में सहयोगी भाव देखने को मिलता है। दोनों एक-दूसरे से भाईचारे के रूप में जुडे हुये है । यदि

इन्हीं तत्वों को "दूर करने वाले" तत्व के रूप में देखा जाये तो तमिल समस्या को लेकर भारत एंव श्रीलंका के आपसी सम्बन्धों में काफी बड़े पैमाने पर गिरावट आयी है । इस अपने प्रथम रूप में क्षेत्रीय सहयोग की रचना में जातीय तत्व की महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार की जा सकती है ।

दक्षिण एशिया - आंतरिक समस्यायें एवं बंगलादेश द्वारा सार्क गठन की पहल:

हालांकि सर्वप्रथम अमेरिका सरकार ने दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग के इस भारत एंव रूस विरोधी मोर्चे के गठन के लिये हेनरी किसिंजर के माध्यम से पाकिस्तान को निमन्त्रित किया गया । उससे कहा गया कि वह अन्य दक्षिण एशियाई राष्ट्रों का विश्वास अर्जित करके इसे साकार रूप प्रदान करें ।[44] लेकिन पाकिस्तान इस समय आंतरिक विद्रोह (एम0आर0डी0), अफगानिस्तान में सोवियत रूस की मौजूदगी से असुरक्षा की भावना से ग्रसित तथा राष्ट्रपति कार्टर द्वारा जनरल जिया उल हक के प्रति ठण्डा व्यवहार एंव अल्प सैनिक सहायता से झुंझलाया हुआ था। 1972 और 79 में क्रमशः "सीटो" एंव "सैटो" की सदस्यता वह इसी बौखलाहट में त्याग चुका था ।

उसे यह भी आशा थी कि अगर भारत इसका सदस्य बन गया तो इसका सीधा अर्थ भारत की अधीनता स्वीकार करना होगा ।[45] पाकिस्तान इस समय पश्चिम एशिया के राष्ट्रो के साथ मित्रता की तरफ कदम बढ़ाने में मशगूल था, जिनसे उसे "इस्लामिक बम" के निर्माण हेतु धन प्राप्त होने की काफी संभावनाये थी । अमेरिका पाकिस्तान की इस पहल से खुश नही था । भुट्टो को अमेरिकी सरकार पर निर्भरता पसन्द नही थी जबकि कार्टर का व्यवहार जनरल जिया उल हक की सैनिक सरकार के प्रति ठण्डा बना हुआ था ।[46] इधर श्रीलंका "एशियान" की सदस्यता के लिये दौड धूप में लगा था तथा जातीय समस्या में उलझा हुआ था ।[47] तो नेपाल दोनों बड़े राष्ट्रों (भारत एंव चीन) के बीच "झूमाझूमी का खेल खेल रहा था ।

इस स्थिति में बांग्लादेश के राष्ट्रपति जनरल जिया उर्रहमान ने उचित अवसर देखकर क्षेत्रीय सहयोग का झण्डा दक्षिण एशिया की प्राचीर पर फहरा दिया । जनरल जिया उर्रहमान द्वारा उठाये गये इस ऐतिहासीक कदम के पीछे निहित कई महत्वपूर्ण कारण गिनाये जा सकेते है ।

इसका एक कारण बांग्लादेश में जनरल जिया उर्रहमान की सरकार के विरुद्ध विद्रोह एंव असंतोष का भाव व्याप्त होना था । वह ऐसा कोई कदम उठाने की सोच रहे थे, जिससे जनता का ध्यान दूसरी तरफ आकर्षित किया जा सकें । [48]

दूसरा कारण, भारत के साथ फरक्का बांध, गंगाजल बंटवारा न्यूमूर द्वीप, सीमा विवाद जैसे द्विपक्षीय विवाद एंव संघर्षों का होना था । जनरल जिया उर्रहमान ने भारत पर दबाव डालने के लिये क्षेत्रीय सहयोग की बागडोर थाम ली ।

तीसरा कारण, अमेरिका, चीन एंव पश्चिमी राष्ट्रों का विश्वास अर्जित करना था, जिससे बांग्लादेश के हितों एंव अंतराष्ट्रीय स्तर में वृद्धि की जा सकें ।

चौथा एंव महत्वपूर्ण कारण, बांग्लादेश का आर्थिक विकास था । बांग्लादेश मुखमरी, गरीबी एंव प्राकृतिक प्रकोपों से ग्रस्त, अत्यन्त पिछड़ा हुआ राष्ट्र था । प्रतिवर्ष अकाल० तूफान एंव चक्रवात जैसी प्राकृतिक विपदाओं के कारण आर्थिक विकास रुका सा गया था । 1971 से 81 के दौरान आर्थिक विकास के नाम पर 0.3/ की वार्षिक वृद्धि हुयी । 1982-83 में यह विकास शून्य था । यहां की प्रति व्यक्ति औसत आय 1982 में मात्र 140 डालर वार्षिक थी । [49]

इसके लिये एक तरफ राष्ट्रपति जिया उर्रहमान ने अमेरिका - चीन एंव अन्य छोटे राष्ट्रों की इच्छा के अनुकूल भारत-रूस मित्रता के विरुद्ध सम्बन्ध सुधारने की पहल की तो दूसरी तरफ दक्षिण एशिया को बाह्य शक्तियों क ी

प्रतिस्पर्धा से मुक्त रखने के लिये दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग को उचित बताकर भारत से भी बातें चलायी । इस प्रकार वह एक तीर से दो शिकार" का लक्ष्य रखकर क्षेत्रीय सहयोग का झण्डा लेकर सबसे आगे दौड़ पड़ें ।

इस तरह बाह्य शक्तियों की पहल (अमेरिका एंव चीन) तथा आंतरिक उथल-पथल, राष्ट्रीय असुरक्षा एंव आर्थिक पिछड़ेपन से चिंतित होकर जनरल जिया उर्रहमान ने क्षेत्रीय सहयोग की तरफ कदम बढ़ाये । जैसा कि बनार्डशॉ ने लिखा है कि "गरीबी सबसे बड़ा पाप औरसंदा अपराध है ।[50] इससे छुटकारा पाने के लिये दक्षिण एशिया के राष्ट्र क्षेत्रीय सहयोग के भाव से धीरे-धीरे जुड़ते चले गये । मई 1980 में राष्ट्रपति जिया उर्रहमान विदेशमंत्री शमशुलहक को छः अन्य राष्ट्रों के लिये क्षेत्रीय सहयोग की रचना हेतु पत्र लिखने की कहकर तत्काल बाद जुलाई एंव अगस्त 1980 में क्रमशः चीन एंव अमेरिका की यात्रा पर निकल गये ।[51]

23 जुलाई 1980 को चीन एंव बांग्लादेश के प्रसारित संयुक्त वक्तव्य में कहा गया कि-" कमजोर राष्ट्रो की शक्तिशाली राष्ट्रों से तथा छोटे राष्ट्रों की बड़े राष्ट्रों से रक्षा के उद्देश्य से गठित क्षेत्रीय सहयोग दक्षिण एशिया में मददगार साबित होगा । अपनी इस पीकिंग यात्रा के दौरान राष्ट्रपति जिया उर्रहमान नें कहा कि "समानता के आधार पर गठित क्षेत्रीय सहयोग की रचना में चीन हमारा समर्थक है ।[53]

अगस्त 1980 में राष्ट्रपति कार्टर द्वारा राष्ट्रपति जिया उर्रहमान को बुलाया गया । अमेरिकी यात्रा से लौटने के बाद राष्ट्रपति जिया उर्रहमानने कहा कि "अमेरिकी राष्ट्रपति से क्षेत्रीय मुद्दों और बांग्लादेश के पड़ोसी राज्यों के साथ सम्बन्धों पर विचार-विमर्श किया गया ।[54]

उपरोक्त घटनाओं से यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि क्षेत्रीय सहयोग की रचना के लिये अमेरिकी एंव चीनी पहल, भारत तथा सोवियत प्रभाव के विरूद्ध की गयी । इस तरह का विचार प्रकट किये जाने पर खण्डन करते हुये बंगलादेश के विदेशसचिव ए0एम0एस0किब्रिया ने कहा कि " दक्षिण एशिया सहयोग और राष्ट्रपति कार्टर के बुलाने में कोई सम्बन्ध नही है ।[55]

बंगलादेश के वामपंथी अखबार होली डे वीकली ने राष्ट्रपति जिया उर्रहमान द्वारा रखे गये दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग के प्रस्ताव को "कार्टर सिद्धान्त की प्रतिध्वनि बताते हुये कहा कि "इसके अलावा यह कुछ भी नहीं है ।[56] हैनरी किसिंजर ने भी घोषित किया था कि छोटे एंव कमजोर राष्ट्रों के विरूद्ध रूस एंव भारत दक्षिण एशिया में बारी-बारी से कार्य करते रहेगें ।[57]

इन सब वक्तव्यों, टिप्पणियों एंव राजनायिक यात्राओं से यह स्पष्ट होता है कि सर्वप्रथम इस क्षेत्रीय सहयोग का गठन भारत एंव रूस के दक्षिण एशिया में बढ़ते प्रभाव के विरूद्ध किया जा रहा था । इसलिये वस्तुस्थिति को दृष्टि में रखते हुये भारत ने प्रारम्भ में सार्क के गठन के प्रति सावधानी-पूर्वक रवैया अपनाना ही श्रेष्ठ समझा । अतः किसी भी प्रकार के क्षेत्रीय सहयोग को संस्थात्मक रूप दिये जाने का भारत ने विरोध किया । भारत को डर था कि सार्क के गठन द्वारा छोटे-छोटे पड़ोसी राष्ट्र उसके विरूद्ध गुटबद्ध होकर उसे ब्लैकमेल" करने की कोशिक करेगें ।[58] बंगलादेश ने भी स्वयं स्वीकारा था कि "अगर भारत ने सहयोग प्रदान नहीं किया तो दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग छोटे-छोटे राष्ट्रों के गिरोह या गुट के रूप में उभरकर आयेगा ।[59]

भारत ने सार्क के गठन का प्रारम्भ में इसलिये भी विरोध किया कि उसके अपने सभी पड़ोसी राष्ट्रों से द्विपक्षीय विवाद है, जिनका क्षेत्रीयकरण होने की संभावना थी । भारत द्वि-पक्षीय विवादों का हल आपसी वार्ता द्वारा खोजे जाने के पक्ष में ही अपना हित सुरक्षित महसूस करता था । इतना होते हुये भी यदि भारत सार्क की सदस्यता ग्रहण नहीं करता तो अन्य राष्ट्रों के मंतव्य पूरा होने की पूरी-पूरी संभावना थी । भारत यह भी नहीं चाहता था कि उसके विरूद्ध क्षेत्र में किसी ~~xऐसेxसहxसेxइस~~ संगठन का निर्माण बाह्य शक्तियों की पहल से उसकी अनुपस्थिति में हो । इसलिये भारत ने राजनीतिक प्रश्नों एंव विवादग्रस्त द्वि-पक्षीय मुद्दों को इसकी कार्यवाही से बाहर रखे जाने के आरक्षणों के साथ आर्थिक एंव सांस्कृतिक सहयोग के रूप में इसके गठन पर सहमति प्रदान कर दी । भारत दक्षिण एशिया क्षेत्र को महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिये भी इस सहयोग पर सहमत हो गया क्योंकि सार्क का रूप असंलग्न रखा गया था ।

पाकिस्तान ने शुरूआत में क्षेत्रीय सहयोग की स्थापना का विरोध किया पाकिस्तानी अखबार डॉन ने अपने संपादकीय में लिखा है कि-"संयुक्त राजनीतिक उद्देश्यों के विकास एंव द्वि-पक्षीय मुद्दों को सुलझाये बिना क्षेत्रीय सहयोग का कोई भी प्रयास असफल होगा । प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था के कारण आर्थिक सहयोग कोई अर्थ नहीं रखता ।[60] पाकिस्तान का मानना था कि इसका सीधा एंव सपाट अर्थ भारत की अधीनता स्वीकार करना होगा । विवादों का शांतिपूर्ण निपटारा तथा शक्ति का प्रयोग न करने जैसेउपबंध "कश्मीर मुद्दे" पर पाकिस्तान की सामरिक नीति एंव उसके राष्ट्रीय हित के विरूद्ध थे ।[61] किन्तु अमेरिका एंव चीन की पहल के कारण उसने सकारात्मक कदम इस तरफ बढाये ।

आरम्भ में नेपाल, श्रीलंका और बांग्लादेश सार्क गठन के पक्ष में तथा भारत और पाकिस्तान विपक्ष में थे ।[62] भारत इसलिये डर रहा था कि इसे अफगान संकट से उत्पन्न स्थिति के विरूद्ध खड़ा किया जा रहा था तो पाकिस्तान इसलिये डर रहा था कि सार्क की सहायता से उसको महत्वपूर्ण लाभ नहीं होने वाला है । जबकि भारत के प्रभाव की काफी संभावनाये है । इस प्रकार दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग का अभ्युदय काफी खींचातानी, हिच-किचाहट, डर, महाशक्तियों की पहल एंव आपसी अविश्वास के वातावरण में विश्व केसबसेबड़े संगठन के रूप में उभरकर आया । इसका प्रादुर्भाव "मैलभाव रहित सहयोग" की भावना के आधार पर हुआ है ।[63]

राष्ट्रपति जियाउरहमान दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग को पश्चिमी झुकाव वाले संगठन का रूप देना चाहते थे, इसलिये उन्होने इसका सम्बन्ध "एशियान" से जोडने के लिये कुछ 6एशियान" राष्ट्रो की यात्रायें भी की ,लेकिन भारत ने क्षेत्रीय सहयोग के असंलग्न रूप के विरूद्ध किसी भी पहल से इंकार कर दिया क्योंकि ये राष्ट्र पश्चिम से जुड़े हुये थे ।[64]

बांग्लादेश एंव श्रीलंका ने दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग को सुरक्षा एवं सामरिक क्षेत्र में सहयोग की बात उठायी तब भी भारत ने इंकार कर दिया, क्योंकि बांग्लादेश, पाकिस्तान एंव श्रीलंका द्वारा अमेरिका को अड्डे प्रदान करने के कारण इसका झुकाव उसकी तरफ होने की काफी संभावनायें थी । भारत इसे असंलग्न रूप में आर्थिक एंव सांस्कृतिक सहयोग तक ही सीमित रखना चाहता था ।

इस प्रकार क्षेत्र में शांति एंव स्थायित्व की प्राप्ति के लिये संयुक्त राष्ट्र चार्टर एंव असंलग्नता के सिद्धान्तों पर आधारित दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग का जन्म एक दूसरे की संप्रभुता, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता तथा क्षेत्रीय अखंडता का आदर करते हुये, एक दूसरे के मामलों में हस्तक्षेप न करने, शक्ति का इस्तेमाल न करने तथा विवादों का शांतिपूर्ण हल खोजने जैसे सिद्धान्तों के आधार पर हुआ । [66]

यह किसी राष्ट्र या संगठन के विरूद्ध या कोई सैनिक गठबंधन नहीं है, बल्कि यह एक आर्थिक एंव सांस्कृतिक संगठन है । इसका गठन क्षेत्र की प्रगति एंव स्थिरता के लिये गुट-निरपेक्ष सिद्धान्तों पर आधारित शांति एंव सहयोग की दृष्टि से किया गया है ।

सार्क की रचना-कुछ प्रतिक्रियायें

जनरल जिया उल हक ने दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग की रचना को "एक नये युग की शुरूआत" बताया है तो जनरल इरशाद ने इसे "मैत्री एंव सहयोग की तरफ महान कदम बताया है ।[68] राजीव गांधी ने अत्यन्त खुशी व्यक्त की, चीन के प्रधान मंत्री झाओजिआंग ने इस पर टिप्पणी करते हुये लिखा है कि "दक्षिण एशिया के सातों राष्ट्रों के हितों की पूर्ति के लिये आपसी लाभ और समानता के आधार पर, सामूहिक आत्म निर्भरता हेतु दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग का गठन एक सही रास्ता है, इससे क्षेत्र में स्थायित्व लाने एंव आर्थिक विकास की तरफ कदम बढाने में मदद मिलेगी ।[69]

जुलाई 1981 में भारत, श्रीलंका एंव मालदीव की यात्रा के समय चीन के विदेश मंत्री हुआंग हुआ ने भी इसका समर्थन किया । अमेरिकी राष्ट्रपति रीगन ने इसका स्वागत करते हुये अत्यन्त खुशी जाहिर की तथा संयुक्त राष्ट्र में अमेरिकी राजदूत श्रीमती जीन किर्क पैट्रिक ने अगस्त 1981 में अपनी ढाका यात्रा के दौरान कहा कि "क्षेत्र में शांति और स्थिरता के लिये दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग की रचना से वह सहमत है ।[70] सोवियत रूस ने "प्रावदा" के जरिये इसका स्वागत करते हुये कहा कि "इससे उप-महाद्वीप के सभी राष्ट्रों के मध्य अच्छे पड़ौसी सम्बन्धों एंव सहयोग को बढावा मिलेगा ।[71]

ब्रिटेन, जापान एंव आस्ट्रेलिया ने भी इसे विकास की तरफ एक उचित कदम बताया । संयुक्त राष्ट्र महासचिव कुर्त वाल्दहिम ने " दक्षिण एशिया के राष्ट्रों के मध्य सम्बन्धों के विकास की नयी शुरूआत बताया"।[72]

ई0ई0सी के सदस्य एंव फ्रांस के भूतपूर्व विदेशमंत्री "क्लाउड चैसन" ने कहा कि-

" सार्क देशों का यह संयुक्त आर्थिक सहयोग वास्तव में उपयोगी है । यह एक शानदार उत्साहपूर्ण कदम है । हालांकि सार्क देशों के मध्य आपस में काफी राजनीतिक मतभेद हैं लेकिन आर्थिक सहयोग की स्थापना में आड़े नही आयेगें । फ्रांस के स्पेन जैसे पड़ौसी राष्ट्रो के साथ काफी राजनीतिक मतभेद हैं लेकिन आपसी आर्थिक लाभ के लिये वे कभी भी सहयोग करने में नही हिचकिचातें ।[73]

अंत में श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने की इस बारे में की गयी टिप्पणी को उल्लिखित करते हुये कहा जा सकता है कि "दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग रूपी जहाज चल चुका है, इस बात की आशा की जानी चाहिये कि उसके अगर कोई विद्रोह नही होगा ।[74]

CHAPTER - II

1. Pot (Bangladesh Series)Vol.X No.181 Sept.7,1985 p.1427.
2. B.H.Farmer-An Introduction to South Asia (New Yark)1983 pp. 143-144.
3. Imtiaz H.Bokhari-"South Asian Regional Cooperation" Asian Survey Vol.XXV No.4 April,1985 p.375.
4. Alexander Lavrentyev-USA & Asia (New Delhi 1982 pp.74-75.
5. Ibid.
6. B.H.Farmer-An Introduction to South Asia(New Yark)1983 p.354.
7. L.P.Singh- "Regional Powers Vs Global Powers in Arma Control" India Quarterly Vol. XXXV No.3 July-Sept.1979, pp. 352-53.
8. Stanley Walpert - Roots of Confrontation in South Asia (New Yark) 1982 pp.186-187.
9. Aleseander Lavrentyev-USA & Asia (New Delhi)1982 p.75
10. Stanley Wolpert-Roots of confrontation in South Asia (New Yark)1982 p.170.
11. Srikant Paranjpe- India and South Asia since 1971 (New Delhi) 1985 p.50.
12. Ibid pp.47-52.
13. Ibid pp. 17-18.
14. S.D.Muni-"SARC Building Regionalism from below" Asian Survey Vol.XXV No.4 April,1985 pp.391-93.
15. Ibid.
16. S.D.Muni-"Strategic Aspects of SARC" Strategic Analysis Vol.IX No.1 April,1984 pp. 23-24.
17. Stanley Wolpert- Roots of confrontation in South Asia (New Yark) 1982 pp. 185-87.
18. B.H.Farmer- An Introduction to South Asia (New Yark)1983 p. 144.

19. Stanley Wolpert- Roots of Confrontation in South Asia (New Yark) 1982 p.6.

20. Sreedhar- "South Asian Security Perspective" in Contemporary South Asia Ed.M.D.Dharam Dasani (Varanasi)1985 p.41.

21. Vijay Sen Budhraj- "Soviet Intrest in South Asia" in South Asia: Stability and Regional Cooperation Ed. M.S.Agwani(Chandigarh)1983 p.103.

22. Stanley Wolpert- Roots confrontation in South Asia (New Yark) 1982 pp. 181-83.

23. Pot (Bangladesh Series) Vol.5 Part 151 July 28, 1980 pp. 1351-52.

24. S.D.Muni- SARC :"Building Regionalism from below" Asian Survey Vol. XXV No.4 April 1985, p.394.

25. Stanley Wolpert - Roots of confrontation in South Asia (New Yark) 1982 p.187.

26. Ibid. p.186.

27. Ibid - pp.186-187.

28. Pratap Kapur- "SARC : Whither Regional Cooperation" Democratic World (New Delhi) Vol.XII No.35 pp.6-7.

29. Sridhar K.Khatri- "South Asian Regional Cooperation" Asian Survey Vol. XXV No.4 April 1985, p.428.

30. B.M.Bhatiya- "Food Security in South Asia" India Quarterly Vol.XL Nos. 3 & 4 July-Dec.84 pp.301-303.

31. Far Eastern Economic Review- Asia Year book(Hongkong) pp. 6-7.

32. P.R.Bhatt - "Trade Flows in South Asia" India Quarterly Vol. XL Nos.3 & 4 July-Dec.84 p.289.

33. Girijesh Pant- "Gains from Economic Cooperation" Mainstrea Vol.XXIV Nos. 13 & 14 Nov.30, 1985 pp. 48-50.

34. Ativr Rahman-Political Economy of SARC (New Delhi) 1986 pp. 40-41.

35. P.R.Bhatt- "Trade Flows in South Asia" India Quarterly Vol. XL Nos. 3 & 4 July-Dec.1984,p.289.

36. Ibid p.298.

37. Ibid p. 299.

38. Vadilal Dagli- "South Asia Devided and Exploited" Commerce Vol.143 No.3681 Annual Number 1981,pp. 7-10.

39. Archana Jaydeep Singh- "South Asian Development Perspectives a comparative overview" in Regional Cooperation and Development in South Asia Vol.II Bhabani Sen Gupta Ed.(New Delhi)1986 p.203.

40. H.T.Parekh "Regional Cooperation in South Asia" Public Affairs (Banglore) Vol.XXV No.4 April,1982 pp.55-60

41. Ministry of External Affairs- SARC : Meeting of Foreign Ministers (New Delhi) 1983 pp. 7-8.

42. Notes and Comments India Quarterly Vol. XL Nos. 3 & 4 July-Dec.84 pp. 332-34.

43. Urmila Phaudis- "Ethnic Tensions in South Asia Implications for Regional Cooperation in Regional Cooperation and Development in South Asia Vol.II Bhabani Sen Gupta Ed.(New Delhi) 1986 p.38.

44. S.D.Muni "Rajiv Gandhi's neighbourhood Policy" Manistream(New Delhi) Vol. XXIV No.25 Feb.22,1986 pp.4-6.

45. Ibid- "Strategic Aspects of SARC" Strategic Analysis Vol. IX No.1 April 1984 pp. 23-24.

46. Srikant Paranjpe- India and South Asia since 1971 (New Delhi) 1985 pp. 32-33.

47. Asian Recorder Vol. XXVIII No.32 Aug.6, 1982 p.16737.

48. Diplomatic Correspondent- "South Asian Cooperation: A Welcome Turn" Democratic World Vol.XII No.15 April10, 1983 pp. 7-8.

49. Syedur Rahman- "Issues and Agenda for South Asian Regional Cooperation" Asian Survey Vol.XXV No.4 April, 1985 p.408.

50. Y.B.Chavan- "Regional Cooperation in South Asia A Perspective" in South Asian Regional Cooperation (Hyderabad)1982 p.207.

51. Pot (Bangladesh Series) Vol.V Part 174 Sept.1,1980 p.1539.

52. Ibid. Vol. V Part 151 July 28,1980 p.1351.

53. Ibid. Vol. V Part 148 July 24, 1980 pp. 1323-24.

54. Ibid. Vol. V Part 175 Sept.2,1980 p.1549.

55. Pot(Bangladesh Series) Vol.V Part 157 Aug.4,1980 p.1394.

56. Holiday Weekly (Dhaka) June 15,1980.

57. Pot(Bangladesh Series) Vol.V Part 99 May 22,1980 p.858.

58. Ibid - Vol.X No.181 Sept.7,1985 p.1427.

59. Srikant Paranjpe-India and South Asia since 1971 (New Delhi) 1985 p.81.

60. Dawn (Karachi) Ed. May 29,1980.

61. S.D.Muni- "Strategic Aspects of SARC" Strategic Analysis Vol.IX No.1 April 1984 pp. 23-24.

62. S.P.Amarasingham- "Wither South Asia?" Ed.Tribune (Colombo) Vol. 25 No.40 May 2,1981 pp.2-4.

63. Ed. "South Asian Regional Cooperation" Commerce (Bombay) Vol.147 No.3768 Aug.20,1983 p.277.

64. S.D.Muni "Strategic Aspects of SARC" Strategic Analysis Vol.IX No.1 April 1984 pp. 23-24.

65. Ibid.

66. Pot (Bangladesh Series) Vol.X No.242 Dec.9,1985 p.1935.

67. Ibid Vol.VI Part 23 Feb.6,1981 p.163.

68. Ibid Vol.X No.242 Dec.9,1985 pp.1927-32.

69. Ibid p.1936.

70. S.U.Kodikara- Foreign Policy of Sri Lanka(New Delhi) 1982 p.186.

71. Sun (Colombo) Dec.20, 1985.

72. Pot (Bangladesh Series) Vol.X No.242, Dec.9,1985 pp. 1935-36.

73. Jagul Chowdhary, Times of India (New Delhi) Feb.7,1986.

74. Sun, Dec.7, 1985.

तृतीय - अध्याय

दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग का विकास तथा लक्ष्य एंव सिद्धान्त

बांग्लादेश के राष्ट्रपति जिया उर्रहमान द्वारा प्रस्तावित क्षेत्रीय सहयोग संगठन की संभावना को साकार रूप प्रदान करने हेतु दक्षिण एशिया के सातों राष्ट्रों के विदेश सचिव सर्वप्रथम श्रीलंका सरकार के निमंत्रण पर 21 से 23 अप्रैल 1981 को कोलम्बो में इकट्ठे हुये । ये सात राष्ट्र थे - भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, मालदीव तथा मेजवान राष्ट्र श्रीलंका ।[1]

श्रीलंका के विदेश मंत्री ए. सी. एस. हमीद ने इस बैठक का उद्घाटन करते हुये कहा कि "दक्षिण एशिया के लोगों की संयुक्त समस्याओं और आंकाक्षाओ के हित में श्रीलंका संयुक्त क्षेत्रीय दृष्टिकोण से जुड़ा रहेगा । उन्होंने आगे कहा कि इन देशो में एक दूसरे के क्षेत्रीय आधार पर सहयोग से व्यापार तकनीक, आपसी बचत या मानवीय स्त्रोतों में वृद्धि को मजबूती से बढ़ाया जा सकेगा । इस प्रकार के सहयोग का लक्ष्य द्विपक्षीय सहयोग के समानान्तर सामूहिक आत्मनिर्भरता का विकास रहेगा । दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग को संगठनात्मक रूप प्रदान करने के लिये सभी विदेश-सचिवों को रचनात्मक कार्य करने की सलाह उन्होंने दी ।[2]

इस बैठक के अध्यक्ष श्रीलंका के विदेश सचिव डब्ल्यू. टी. जयसिंघे चुने गये । इस बैठक में बांग्लादेश ने कार्यकारी प्रपत्र जारी किया , इसमें अराजनीतिक प्रकृति के 11 क्षेत्र क्षेत्रीय सहयोग हेतु सुझाये गये, जो इस प्रकार थे -

(1) दूर संचार (2) मौसम विज्ञान (3) यातायात

(14) जहाजी परिवहन (15) पर्यटन (16) कृषि (17) ग्रामीण विकास (18) विज्ञान एवं तकनीकी (19) संयुक्त जोखिम (110) व्यापार तथा (111) शिक्षा एवं संस्कृति[3]

बांग्लादेश ने इस कार्यकारी पत्र में क्षेत्र, प्रकृति एवं संगठनात्मक रूप को दर्शाते हुये, इसे "एशियान" तथा "अफ्रीकी एकता संगठन (ओ.ए.यू.) की तरह, निम्न नाम सुझाये-

(1) साउथ एशियन एसोसिएशन फॉर कॉ-आपरेशन (एस.ए.ए.सी.)
(2) एसोसिएशन ऑफ साउथ एशिया (ए.एस.ए.)
(3) एसोसिएशन ऑफ साउथ एशिया फॉर कॉ-ऑपरेशन (ए.एस.ए.सी.)
(4) ऑर्गनाइजेशन ऑफ साउथ एशियन स्टेट्स (ओ.एस.ए.एस.)[4]

बांग्लादेश ने एक प्रारूप घोषणा पत्र भी जारी किया, जो इस प्रकार था-

भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, भूटान, मालदीव, नेपाल तथा श्रीलंका की सरकारों को यह विश्वास दिलाया जाता है कि दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग विकास द्वारा आपसी लाभ को बढ़ावा दिया जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र चार्टर एवं असंलग्नता के सिद्धान्तों पर दृढ़ता से अमल करके क्षेत्र में शांति एवं स्थायित्व को बढ़ावा दिया जा सकता है। संप्रभुता के सिद्धान्त, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, क्षेत्रीय अखंडता, एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में अहस्तक्षेप, शक्ति के प्रयोग बिना, विवादों के शांतिपूर्ण निपटारे के सिद्धान्तो का आदर करते हुये आर्थिक, तकनीकी, वैज्ञानिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास की गति को दक्षिण एशिया में तीव्र किया जा सकता है। समानता एवं समान हितों के आधार पर आपसी साझेदारी एवं सद्भाव पैदा

किया जा सकता है । दक्षिण एशिया में नजदीकी सहयोग की स्थापना के लिये छायावृत्त मार्ग ‖ Avenues ‖ की खोज की जानी चाहिये तथा समान उद्देश्यों एवं लक्ष्यों के लिये अन्य क्षेत्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का सहयोग करना चाहिये ।[5]

इस प्रारूप घोषणा पत्र में राष्ट्रपति जियाउर्रहमान ने प्रस्ताव रखा कि दक्षिण एशियाई राष्ट्रों के अध्यक्षों का शिखर सम्मेलन क्षेत्रीय सहयोग को संस्थात्मक रूप प्रदान करने के लिये शीघ्र ही बुलाया जायेगा । आवश्यकता होने पर पूर्व तैयारी हेतु विदेश मंत्रियों की बैठक भी आयोजित की जा सकती है ।[6]

श्रीलंका के विदेश मंत्री हमीद ने दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग के सम्बन्ध में निम्न विचार व्यक्त किये-

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सभी नजदीकी सहयोग क्षेत्र में शांति, सुरक्षा एवं आर्थिक विकास के सभी मामलों से जुड़े हुये हैं । दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग के सम्बन्ध में गतिशील विकास हेतु पहले से ही स्थापित क्षेत्रीय संगठनों से एकबद्ध वार्ता की जानी चाहिये । अंतर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप के बिना क्षेत्र के अंदर ही विवादों एवं असमानताओं को सुलझाने की संभावनायें खोजी जानी चाहिये । अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार, औद्योगिक पूरकता एवं कृषि सहयोग के विस्तार सहित क्षेत्रीय आर्थिक और तकनीकी सहयोग के माध्यम से सामूहिक आत्मनिर्भरता की तरफ कदम बढ़ाये जाने चाहिये । व्यवस्थात्मक सांस्कृतिक आदान-प्रदान, पर्यटन और संस्थात्मक सहयोग द्वारा मानवीय अर्न्तक्रियाओं को क्षेत्र में प्रोत्साहित किया जाना चाहिये ।[7]

लेकिन हमीद द्वारा "एशियान की तरह के संगठन की रचना का समर्थन भारत और पाकिस्तान के सावधानीयुक्त दृष्टिकोण के कारण निरर्थक

हो गया । इस समय भारत के विदेश सचिव आर. डी. साठे ने क्षेत्रीय सहयोग को अतिशीघ्र संगठनात्मक रूप दिये जाने के उतावलेपन का विरोध करते हुये कहा था कि "रोम एक दिन में ही नहीं बना लिया गया था ।"[8]

पाकिस्तान के विदेश सचिव रियाज पिराचा ने धीमी गति से कदम दर कदम आगे बढ़ने के लिये कहते हुये कहा कि "वर्तमान परिस्थितियों में क्षेत्रीय सहयोग को संस्थात्मक रूप प्रदान करना सुगम नहीं है । इस प्रकार के संगठन की रचना का इंतजार और अधिक क्षेत्रीय समझ एवं सदस्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं में पूरकता का विकास होने तक किया जाना चाहिये । उच्च स्तरीय (मंत्रि स्तर की एवं शिखर सम्मेलन) बैठकों के लिये अभी वातावरण अपरिपक्व है ।"[9]

इस बैठक में भारत और पाकिस्तान ने सावधानीपूर्ण, श्रीलंका ने आशावादी तथा बांग्लादेश ने मजबूत समर्थन की नीति का दृष्टिकोण अपनाया । सभी विदेश सचिव इस बात पर सहमत हुये कि दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग लाभदायक, वांछनीय एवं आवश्यक है । सभी बैठकों में सर्व सम्मति से निर्णय लिये जाने पर सहमति हुयी । द्वि-पक्षीय एवं विरोधी मुद्दे इसकी कार्यवाही से बाहर रखे जाने पर भी सहमति हुयी ।[10] सम्प्रभु समानता, क्षेत्रीय अखण्डता, राजनीतिक स्वतन्त्रता, आंतरिक मामलों में अहस्तक्षेप तथा आपसी लाभ के लिये कार्य करने जैसे सिद्धान्तों पर भी सहमति हुयी । सभी विदेश सचिवों ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विकासशील देशों को भी सहयोग दिये जाने पर सहमति प्रकट की । निम्न राष्ट्रों की देखरेख में निम्न पाँच विषयों के अध्ययन पर सहमति हुयी-

1- कृषि - बांग्लादेश,

2- ग्रामीण विकास- श्रीलंका,

3- दूर संचार - पाकिस्तान,

4- मौसम विज्ञान - भारत, तथा
5- स्वास्थ्य एवं जनसंख्या- नेपाल ।[11]

इस बैठक में श्रीलंका की देखरेख में एक "सम्पूर्ण समिति" (committee of whole) की स्थापना की गयी, जो अन्य क्षेत्रों की खोज एवं सहयोग के बारे में रिपोर्ट प्रेषित करने के लिये गठित की गयी। अगली विदेश सचिवों के स्तर की बैठक का आयोजन छः महीने के अंतराल में नेपाल की राजधानी काठमांडू में किया जाना, तय किया गया। बंगलादेश के विदेश सचिव एस.ए.एम.एस किब्रिया ने इस बैठक पर टिप्पणी करते हुये कहा कि "पहली बार सातों राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का क्षेत्रीय सहयोग के लिये मिलना एक ऐतिहासिक घटना है।"[12]

सार्क विदेश सचिवों की द्वितीय बैठक- काठमांडू 2 से 4 नवम्बर 1981।-

अप्रैल 1981 में कोलम्बो में आयोजित विदेश सचिवों की प्रथम बैठक के निर्णय के अनुसार, नेपाल सरकार के निमंत्रण पर सातों राष्ट्रों के विदेश सचिव दूसरी बार काठमांडू में 2 से 4 नवम्बर 1981 तक मिले।[13]

नेपाल के विदेश सचिव जगदीश एस.जे.बी.राना इस बैठक के अध्यक्ष निर्वाचित किये गये। इसका उद्घाटन नेपाल के विदेश मंत्री तथा प्रधानमंत्री सूर्यबहादुर थापा ने करते हुये कहा कि- गरीबी एवं दूसरों पर निर्भरता के विरुद्ध संयुक्त दृष्टिकोण तथा सहयोग का विकास तार्किक रूप से अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि क्षेत्र की जनसंख्या के जीवन स्तर में सुधार तथा राष्ट्रों का विकास इसी आधार पर संभव हो सकेगा।

इस बैठक में विषयों के अध्ययन की योजना को दो भागों में बांट दिया गया- तात्कालिक कार्यवाही योजना तथा लम्बी अवधि कार्यवाही योजना।

तात्कालिक कार्यवाही योजना

इसमें निम्न प्रावधानों को सम्मिलित किया गया:

1- सूचना एवं आंकड़ों का आदान-प्रदान,

2- विशेषज्ञों, प्रशिक्षण सुविधाओं एवं छात्रवृत्तियों का आदान-प्रदान,

3- क्षेत्रीय आधार पर सेमिनार एवं कार्यशालाओं (Work shop) का संगठन ।

लम्बी अवधि योजना

इसमें निम्न प्रावधान रखे गये:

1- स्त्रोतों एवं आवश्यकताओं का कर निर्धारण

2- क्षेत्रीय प्रकृति के प्रोजेक्टों की आयोजना या तैयारी,

3- प्रोजेक्टों के संचालन के लिये वित्तीय प्रबन्ध की व्यवस्था ।

इस बैठक में निम्न तीन क्षेत्र भी आपसी सहयोग हेतु सम्मिलित कर लिये गये-

यातायात - मालदीव

डाक सेवा - भूटान

वैज्ञानिक एवं तकनीकी सहयोग- पाकिस्तान ।

अगली बैठक का आयोजन इस्लामाबाद में करना तय हुआ । [14]

विदेश सचिवों की तीसरी बैठक- इस्लामाबाद 7 से 9 अगस्त 1982 :-

विदेश सचिवों की तीसरी बैठक का आयोजन पाकिस्तान सरकार द्वारा 7 से 9 अगस्त 1982 तक, इस्लामाबाद में किया गया । इस बैठक के अध्यक्ष पाकिस्तान के विदेश सचिव निआज ए. नाइक चुने गये । [15] पाकिस्तान के विदेश मंत्री साहबजादा याकूब खान ने इसका उद्घाटन करते हुये कहा कि-

क्षेत्र के सभी राष्ट्र क्षेत्रीय सहयोग की स्थापना से शांति एवं सुरक्षा को बनाये रख सकेंगे तथा आपसी विश्वास एवं सहयोग से सामाजिक एवं आर्थिक विकास की तरफ कदम बढ़ाकर लोगों की आकांक्षाओं के अनुरूप कार्य कर सकेंगे ।[16]

इस बैठक में विदेश सचिवों ने प्रति दो वर्ष बाद वर्णमाला के अनुसार अध्यक्षता के बदलते रहने का विचार व्यक्त किया । इसमें "खेल कला एवं संस्कृति नाम से एक और क्षेत्र पर सहमति हुयी । विदेश सचिवों ने मई से सितम्बर 1983 के मध्य विदेश मंत्रियों की बैठक के आयोजना पर भी सहमति व्यक्त की ।"[17]

विदेश सचिवों की चौथी बैठक- ढाका 28 से 30 मार्च 1983 तक:-

विदेश सचिवों की चौथी बैठक का आयोजन 28 से 30 मार्च 1983 तक बांग्लादेश की राजधानी ढाका में किया गया । इस बैठक के अध्यक्ष औपचारिक रूप से बांग्लादेश के विदेश सचिव ए.एच.एस.अताउल करीम चुने गये ।[18]

इस बैठक का उद्घाटन करते हुये बंगलादेश के विदेश सचिव ए.आर.शमशुद्दोहा ने कहा कि- "दक्षिण एशिया के सातों राष्ट्रों की मित्रता, क्षेत्र में शांति एकता तथा लोगों के जीवन स्तर में सुधार के मौलिक लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक होगी ।"[19] इस बैठक में स्टैंडिंग कमेटी के गठन पर सहमति हुयी, जिसके सदस्य सातों राष्ट्रों के विदेश सचिवों को बनाना स्वीकृत किया गया । प्रत्येक विषय की विशेषज्ञ समिति के रूप में सभी विषयों की "तकनीकी समितियों" के गठन को भी स्वीकृति प्रदान की गयी । इसके सदस्य सम्बन्धित क्षेत्र के विशेषज्ञों को बनाये जाने पर सहमति हुयी । ये "तकनीकी समितियां" समय-समय पर अपनी प्रगति की रिपोर्ट

"स्टैंडिग कमेटी" के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये जिम्मेदार ठहरायी गयी । "स्टैंडिग कमेटी" इनकी सलाह के आधार पर "विदेश मंत्रियों" की बैठक को सिफारिश प्रस्तुत करने की जिम्मेदार ठहरायी गयी ।[20]

इस बैठक में "खेल, कला एवं संस्कृति विषय को भारत की देख-रेख में रखा गया तथा विदेश मंत्रियों की प्रथम बैठक नई दिल्ली में आयोजित किये जाने पर सहमति हुयी । ई.ई.सी. एवं आई.टी.यू. द्वारा दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग को सहायता प्रदान किये जाने की घोषणा का स्वागत किया ।

विदेश सचिवों की पांचवीं या पूर्व तैयारी बैठक- नई दिल्ली।28-29 जुलाई, 1983।

28 और 29 जुलाई 1983 को विदेश सचिवों की पांचवीं बैठक का आयोजन नई दिल्ली में प्रथम विदेश मंत्री स्तर की बैठक की पूर्व तैयारी हेतु किया गया । इसके अध्यक्ष भारत के विदेश सचिव श्री एम.रसगोत्रा बनाये गये । श्री रसगोत्रा ने इसे "नया युग" बताया ।[21] भूटान के विदेश सचिव डी.टी.तोवग्येल ने स्व0 जियाउर्रहमान को "दक्षिण एशिया का महान पुत्र"[22] कहकर सम्बोधित किया तथा कहा कि- "अगर आज वो जिंदा होते तो दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग के अपने स्वप्न को साकार होता देख विश्व के सबसे भाग्यशाली व्यक्ति के रूप में स्वयं को पाते"[23]

इस बैठक में "संयुक्त कार्यवाही योजना"(Integrated Programme of Action) का प्रारूप तैयार किया गया । "सार्क" का प्रारूप घोषणा पत्र तैयार किया तथा विदेश मंत्रियों की बैठक के लिये अस्थायी कार्यक्रम तैयार किया ।

सातों राष्ट्रों ने वित्तीय प्रबन्ध हेतु निम्न सहयोग की घोषणा की-

बंगलादेश - 5 मिलियन टका

मालदीव	-	84000 रूफियाज
भारत	-	5 मिलियन रू.
नेपाल	-	1.5 मि. नेपाली रू.
पाकिस्तान	-	3.6 मि. रू. तथा 4 लाख छात्रवृत्ति हेतु
भूटान	-	5 लाख

श्रीलंका के विदेश सचिव ने घोषणा की कि उनकी सरकार जल्दी ही वित्तीय सहायता की तरफ कदम उठायेगी ।[24]

"सार्क" राष्ट्रों के विदेश मंत्रियों की प्रथम बैठक- नई दिल्ली।1-2 अगस्त, 1983।

सर्वप्रथम, दक्षिण एशिया के सातों राष्ट्रों के विदेश मंत्रियों की राजनीतिक स्तर पर बैठक । और 2 अगस्त 1983 को नई दिल्ली के विज्ञान भवन में आयोजित की गयी । इसके औपचारिक अध्यक्ष भारत के विदेश मंत्री पी.वी. नरसिंहराव चुने गये । इस बैठक के उद्घाटन भाषण में श्रीमती गांधी ने कहा कि-

"हमारे क्षेत्र के आपसी सम्बन्धों के विकास में राजनीतिक स्तर पर यह एक महत्वपूर्ण कदम है । हम सातों, जो कि यहां इकट्ठे हुये हैं, भौगोलिक रूप से अत्यन्त नजदीक है । हम समान अनुभव आकांक्षाओं और चुनौतियों का सामना कर रहे हैं । प्रत्येक राष्ट्र व्यक्तिगत व्यक्तित्व, पृथक दृष्टिकोण एवं भिन्न राजनीतिक व्यवस्था रखता है, हम सभी समान है । द्विपक्षीय विवादों को भुलाकर हम संयुक्त रूप से शांति और विकास हेतु कार्य कर सकते हैं । आर्थिक सहयोग दक्षिण एशिया में स्थायित्व प्रदान करने तथा नजदीकी मित्रवत सम्बन्धों को मजबूत बनाने में सहायक होगा । हम तोड़-फोड़ और बाह्य शक्तियों के प्रभाव के विरुद्ध हैं ।"[25]

इस बैठक में नौ क्षेत्रों को औपचारिक रूप से सहयोग हेतु स्वीकृत कर लिया गया । सभी विषयों के लिये "संयुक्त कार्यवाही योजना" (Integrated programme of Action) की घोषणा की गयी जिसे "लम्बी अवधि योजना" एवं "अल्प अवधि योजना" के रूप में दो भागों में बांटा गया । विषय एवं क्षेत्र निम्न प्रकार से राष्ट्रों की देख रेख में सौंपे गये-

1-	कृषि	- बंगलादेश
2-	डाक सेवा	- भूटान,
3-	स्वास्थ्य एवं जनसंख्या	- नेपाल
4-	ग्रामीण विकास	- श्रीलंका,
5-	यातायात	- मालदीव
6-	वैज्ञानिक एवं तकनीकी सहयोग	- पाकिस्तान
7-	दूर संचार	- पाकिस्तान,
8-	मौसम विज्ञान	- भारत, तथा
9-	खेल कला एवं संस्कृति	- भारत ।[26]

नई दिल्ली में आयोजित प्रथम विदेश मंत्री स्तर की बैठक कई दिशाओं में दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग के संदर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है । यह बैठक सर्वप्रथम राजनीतिक स्तर पर आयोजित की गयी, इससे पूर्व सरकारी स्तर पर ही विदेश सचिवों के मध्य विचार-विमर्श चल रहा था । इस बैठक में ही सर्वप्रथम दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग का नामकरण "सार्क" ।दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग। के नाम से किया गया तथा क्रियाशील एवं सकारात्मक रूख अपनाते हुये तकनीकी समितियों एवं स्टैंडिंग कमेटी का गठन किया गया ।

सार्क के लक्ष्य एवं सिद्धान्त अपनाकर इसे एक दिशा प्रदान की जिससे सार्क का आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप उभरकर सामने आया । अब तक जो अटकलें

इसके स्वरूप निर्धारण के बारे में लगायी जा रही थी, उनमें कमी आयी तथा अपनी तरह के एक अलग क्षेत्रीय सहयोग के रूप में सार्क का क्षेत्र निर्धारित किया गया। यह "एशियान" एवं ई.ई.सी. से भिन्न प्रकृति का रखा गया, क्योंकि ये आर्थिक सहयोग संगठन के साथ साथ राजनीतिक रूप से पश्चिम से जुड़े हुये हैं जबकि सार्क को असंलग्न रूप प्रदान किया गया तथा द्विपक्षीय एवं विवादास्पद मुद्दे इसकी कार्यवाही से बाहर रखकर "सार्क" में मतभेदों को दूर करने की व्यवस्था भी करली गयी। सभी निर्णय मतैक्य के आधार पर लिये जाने की व्यवस्था के कारण सभी छोटे-बड़े राष्ट्रों को समानता का स्तर प्रदान करके आपसी भ्रमों की कमी की तरफ कदम बढ़ाये। योजनाओं पर होने वाले व्यय की पूर्ति हेतु सभी राष्ट्रों को स्वेच्छा से सहयोग प्रदान करने की व्यवस्था द्वारा स्वतन्त्रता की नीति अपनायी।

इस प्रकार नयी दिल्ली बैठक में "नई दिल्ली घोषणा पत्र" को स्वीकृति प्रदान करके क्षेत्रीय सहयोग को संस्थात्मक रूप प्रदान करने की तरफ कदम बढ़ाने की इच्छा को सातों सदस्य राष्ट्रो द्वारा व्यक्त करके ऐतिहासिक कदम उठाया गया।

सातों राष्ट्रों के विदेशमंत्रियों ने अपने संयुक्त वक्तव्य में घोषित किया कि-

1- हम क्षेत्रीय सहयोग के माध्यम से आर्थिक एवं सामाजिक विकास की तरफ कदम बढ़ाकर दक्षिण एशिया के लोगों की समान समस्याओं और उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति के प्रति चैतन्य रहेंगे।

2- सार्क सहयोग लाभदायक इच्छानुकूल एवं आवश्यक है। इसक्षेत्र के लोगों के जीवन स्तर में सुधार तथा कल्याण में वृद्धि की तरफ कदम बढ़ाये जा सकेंगे। इसके द्वारा क्षेत्र के राष्ट्रों एवं लोगों के मध्य आपसी समझ तथा मित्रता को बढ़ावा दिया जा सकेगा।

3- यह सहयोग आपसी सहभागिता और समझ पर आधारित होगा ।[27]

"सार्क" के लक्ष्य

इस बैठक में सार्क के निम्न लक्ष्य स्वीकृत किये गये-

1- दक्षिण एशिया के लोगों के कल्याण में वृद्धि एवं उनके जीवन स्तर में सुधार ।

2- क्षेत्र में आर्थिक उपज, सामाजिक प्रगति एवं सांस्कृतिक विकास को बढ़ाना ।

3- दक्षिण एशिया के राष्ट्रों के मध्य सामूहिक आत्मनिर्भरता को मजबूत बनाना और विकसित करना ।

4- आपसी विश्वास एवं समझ का विकास तथा एक दूसरे की समस्याओं में सहायता करना ।

5- आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी तथा वैज्ञानिक क्षेत्रों में आपसी सहायता एवं सक्रिय सहयोग का विकास करना ।

6- अन्य विकासशील देशों के साथ सहयोग को मजबूत बनाना ।

7- अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त हितों के मामलों में आपसी सहयोग को मजबूत बनाना ।

8- समान लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय संगठनों का सहयोग ।[28]

सार्क के सिद्धान्त

1- यह सहयोग संप्रभु समानता, क्षेत्रीय अखंडता, राजनीतिक स्वतन्त्रता, आपसी लाभ तथा अन्य राज्यों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने के सिद्धान्तों पर आधारित होगा ।

2- यह सहयोग द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय न होकर पूरक होगा ।

3- यह सहयोग द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय बाध्यताओं से प्रतिबंधित नहीं होगा ।[29]

संस्थात्मक व्यवस्था

तकनीकी समितियां

सभी चयनित नौ क्षेत्रों की देख रेख एवं कार्यान्वयन हेतु तकनीकी समितियों के गठन पर सहमति प्रदान की गयी । प्रत्येक समिति क्षेत्र के सभी राष्ट्रों के लिये खुली रखी गयी, जो कि सहयोगी क्षेत्र के कार्यान्वयन, समन्वय एवं योजनाओं को अपनाने की जिम्मेदार निम्न प्रकार से ठहरायी गयी-

1- सहमति प्राप्त विषयों के सम्बन्ध में क्षेत्रीय सहयोग के क्षेत्र का निर्धारण तथा सक्रिय इरादा ।

2- क्रियाशील योजनाओं का निर्धारण एवं तैयारी ।

3- क्रियाशील योजनाओं के लिये वित्तीय प्रबंध का संकल्प ।

4- लागत का आपस में आवंटन ।

5- बिखरी हुयी सक्रिय योजनाओं का समन्वय ।

6- प्रगति हेतु कार्यान्वयन या संचालन ।[30]

तकनीकी समितियां समय समय पर स्टैंडिंग कमेटी को अपनी रिपोर्ट प्रेषित करती रहेगी । वर्णमाला के अनुसार प्रत्येक दो वर्ष बाद क्रम से तकनीकी समितियों की अध्यक्षता सदस्य राष्ट्रों के नेतृत्व में बदलती रहेगी । आवश्यकता पड़ने पर तकनीकी समितियां निम्न कदम उठा सकेंगी:

1- राष्ट्रीय तकनीकी अभिकरणों के अध्यक्षों की मीटिंग बुला सकेंगी ।

2- विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों की मीटिंग बुला सकेंगी ।

3- क्षेत्र के मान्यता प्राप्त केन्द्रों से सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगी ।[31]

यदि किसी योजना में दो से अधिक राष्ट्र जुड़े हों, लेकिन सभी राष्ट्र

इसमें सक्रिय न हो, तो ऐसी स्थिति में सम्बन्धित राष्ट्र स्टेंडिग कमेटी से पूर्व जांच के लिये सक्रिय समिति का गठन कर सकेंगे ।

स्टेंडिंग समिति

स्टेंडिग समिति की स्थापना विदेश सचिवों के स्तर पर क्रियाशील योजनाओं के समन्वय एवं नेतृत्व के लिये की गयी है, जो कि निम्न प्रकार से कार्य करेगी :-

1- योजनाओं की स्वीकृति एवं उनके लिये वित्तीय निर्धारण ।

2- सभी सक्रिय योजनाओं का समन्वय एवं उनमें प्राथमिकता का निर्धारण ।

3- क्षेत्रीय बाह्य स्त्रोतों का विदोहन ।

4- समुचित अध्ययन पर आधारित सहयोग के नवीन क्षेत्रों की पहचान ।

स्टेंडिंग कमेटी की प्रति वर्ष एक बैठक होना आवश्यक ठहराया गया । इसके सदस्य सातों राष्ट्रों के विदेश सचिव बनाये गये हैं । यह समिति विदेश मंत्री स्तर की बैठक के आयोजन एवं नीति निर्धारण सम्बन्धी व्यवस्था की जिम्मेदार ठहरायी गयी है ।[32]

इस बैठक में भारत एवं श्रीलंका के प्रतिनिधियों में जातीय समस्या को लेकर एकदम रूखा व्यवहार बना रहा तथा श्रीलंका के विदेश मंत्री इस बैठक की औपचारिक समाप्ति से पूर्व ही स्वदेश लौट गये ।[33]

संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव जेवियर परेज डिक्यूलर ने सार्क की विदेश मंत्री स्तर की प्रथम बैठक को दक्षिण एशिया के लोगों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास तथा प्रगति के मार्ग में महत्वपूर्ण कदम बताया ।[34]

सार्क "स्टेंडिंग कमेटी" का प्रथम सत्र-नई दिल्ली (27-28 फरवरी 1984)

स्टेंडिग कमेटी के प्रथम सत्र का आयोजन नई दिल्ली में भारत के विदेश

सचिव एम. रसगोत्रा की अध्यक्षता में 27 तथा 28 फरवरी 1984 को किया गया । इसका उद्घाटन करते हुये विदेश मंत्री पी. वी. नरसिंहराव ने कहा कि- "क्षेत्र के राष्ट्र यह महसूस करते हैं कि आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सहयोग के साथ-साथ राजनीतिक सम्बन्ध भी मजबूत होंगे क्योंकि आपस में ये दोनों जुड़े हुये हैं । यह सहयोग क्षेत्र के राष्ट्रों के मध्य आपसी विश्वास अर्जित करने में ही सहायक नहीं होगा बल्कि समूचे विश्व में प्रभावशाली रूप से शांति एवं प्रगति में भी सहायक होगा ।"[35]

बंगलादेश के विदेश सचिव ए. एच. एस. अताउल करीम ने इस बैठक की कार्यवाही स्पष्ट करते हुये कहा कि- इसमें निम्न सात मुद्दों पर विचार विमर्श किया जायेगा-

1- सभी नौ तकनीकी समितियों की रिपोर्ट का परीक्षण एवं अनुमोदन ।
2- सम्बन्धित विषयों के संदर्भ में अग्रिम कार्यवाही हेतु निर्देश देना ।
3- 1984-85 के सार्क के बजट पर विचार-विमर्श ।
4- ई. ई. सी तथा आई. टी. यू. द्वारा यातायात, विज्ञान एवं तकनीकी तथा दूर संचार क्षेत्रों के लिये वित्तीय मदद की घोषणा पर विचार ।
5- सहयोग के नवीन क्षेत्रों की संभावनाओं का परीक्षण ।
6- दक्षिण एशिया के राष्ट्रों के संदर्भ में विश्व की अर्थ व्यवस्था एवं उत्तर-दक्षिण वार्ताओं पर पुनर्विचार तथा
7- प्रत्येक दो वर्ष बाद तकनीकी समितियों की अध्यक्षता के वर्णमाला के अनुसार बदलते रहने पर पुनर्विचार करना ।[36]

स्टेडिंग कमेटी के इस प्रथम सत्र में सभी तकनीकी समितियों ने अपनी अपनी रिपोर्ट प्रेषित की । इस बैठक में 1984-85 के सार्क बजट हेतु वित्त की निम्न व्यवस्था की गयी-

भारत - 7.5 मिलियन रुपये की मदद

पाकिस्तान - 5 मिलियन तथा 5 लाख रू0 छात्रवृत्तियों हेतु
श्रीलंका - 2.5 मि. रू.

बंगला देश, नेपाल, भूटान एवं मालदीव ने कहा कि वे बाद में घोषणा करेंगे क्योंकि इस पर राष्ट्रीय बजट में विचार-विमर्श चल रहा है ।[37]

स्टैंडिंग कमेटी का दूसरा सत्र- माले 17-8 जुलाई, 1984।

स्टैंडिंग कमेटी के द्वितीय सत्र का आयोजन मालदीव की राजधानी माले में 7 और 8 जुलाई 1984 को आयोजित किया गया । इस बैठक का आयोजन 10 और 11 जुलाई को होने वाली दूसरी विदेश मंत्री स्तर की बैठक की पूर्व तैयारी हेतु किया गया । इसकी अध्यक्षता मालदीव के विदेश सचिव इब्राहिम हुसैन जाकी ने की ।[38]

नेपाल के विदेश सचिव विश्व प्रधान ने घोषित किया कि- "नेपाल, काठमांडू में 17 सितम्बर 1984 को सार्क योजना के अंतर्गत प्रथम दक्षिण एशियाई फेडरेशन खेलों का आयोजन करने जा रहा है । "सार्क की सफलता इसके सदस्य राष्ट्रों की राजनीतिक इच्छा पर निर्भर करती है ।"[39]

श्रीलंका के विदेश सचिव डब्ल्यू. टी. जयसिंघे ने कहा कि- "हम विश्वास करते हैं कि सार्क रूपी महल को ठोस आधार प्रदान करने के लिये सम्पूर्ण प्रयत्नों की आवश्यकता है । यदि इसकी रचना हम असुरक्षा के आधार पर करते हैं तो बाद में यह कभी भी ढह सकता है ।" [40]

इस बैठक में तकनीकी समितियों ने अपनी रिपोर्ट प्रेषित की, विश्व की अर्थव्यवस्था पर विचार विमर्श किया गया तथा 1984-85 के सार्क बजट के लिये निम्न प्रकार से वित्त की व्यवस्था की गयी-

बंगला देश - 6.25 मिलियन टका
भूटान - 1 मिलियन नू
भारत - 7.5 मि. रू.

मालदीव	-	84000 रूफियाज
नेपाल	-	2.5 मि. नेपाली रू.
पाकिस्तान	-	5 मि. रू. + 5 लाख छात्रवृत्ति हेतु
श्रीलंका	-	2.5 मि. श्रीलंका रू.41

विदेश मंत्रियों की द्वितीय बैठक- माले 10 और 11 जुलाई, 1984-

मालदीव की राजधानी माले में द्वितीय विदेश मंत्री सम्मेलन का आयोजन 10 और 11 जुलाई, 1984 को किया गया । इसके अध्यक्ष मालदीव के विदेश मंत्री फाथुल्ला जमील चुने गये ।[42] इस बैठक के उद्घाटन भाषण में मालदीव के राष्ट्रपति मौमून अब्दुल गयूम ने कहा कि- "विश्व की अर्थव्यवस्था में क्षेत्र के राष्ट्र आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं का सामना क्षेत्रीय सहयोग की भावना के आधार पर ही कर सकते हैं । हमारे क्षेत्र के लोगों की राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता को मजबूत बनाने के लिये क्षेत्रीय सहयोग में बढ़ोत्तरी अत्यन्त आवश्यक है । एक अच्छी योजना और तकनीकी आदान-प्रदान के कारण स्त्रोतों का विरोध विस्तृत पैमाने पर संभव हो सकेगा । "सार्क लगभग एक बिलियन लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं का साकार रूप है- एक ऐसा संघ जो शांति, स्थायित्व एवं उत्कर्ष हेतु कार्य करे ।"[43]

श्रीलंका के विदेश मंत्री ए.सी.एस.हमीद ने कहा कि "राजनीतिक स्थायित आर्थिक प्रगति पर निर्भर करता है । इसके लिये राजनीतिक प्रेरणा की आवश्यकता है ।"[44]

इस बैठक के समक्ष स्टैंडिंग कमेटी के दोनों सत्रों की रिपोर्ट प्रेषित की गयी । सभी विदेश मंत्री इस बात पर सहमत हुये कि दूर संचार और वायु यातायात में बढ़ोत्तरी ।कम से कम दक्षिण एशिया के राष्ट्रों की राजधानियों

से सम्पर्क बनाये रखने के लिये। तत्काल की जाये । अंतराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में विकासशील राष्ट्रों की खराब अर्थव्यवस्था पर विचार-विमर्श किया गया ।[45] मई 1985 में थिम्पू में तीसरे विदेश मंत्री सम्मेलन तथा 1985 के अंत में ढाका में शिखर सम्मेलन के आयोजन पर सहमति हुयी ।

स्टेंडिग कमेटी का तीसरा सत्र-माले 5 से 7 फरवरी 1985।

स्टेंडिग कमेटी की तीसरी बैठक 5 से 7 फरवरी 1985 तक मालदीव की राजधानी माली में की गयी । इसकी अध्यक्षता मालदीव के विदेश सचिव इब्राहिम हुसैन जाकी ने की । मालदीव के विदेश मंत्री फाथुल्ला जमील ने इसके उद्घाटन भाषण में कहा कि- बाह्य शक्तियों द्वारा उथल-पुथल एवं तोड़-फोड़ की कार्यवाहियों के विरुद्ध दक्षिण एशिया के राष्ट्रों को सतर्क एवं एकबद्ध हो जाना चाहिये, हमें अपनी आंतरिक व्यवस्था में बाह्य शक्तियों को हस्तक्षेप का मौका नहीं देना चाहिये । सार्क का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य क्षेत्र का आर्थिक एवं सामाजिक विकास, रोजगार की उपलब्धि तथा खाद्यान्न के उत्पादन में बढ़ोत्तरी, स्वास्थ्य सुधार एवं जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगाना है ।" फाथुल्ला जमील ने श्रीमती गांधी की हत्या पर गहरा दुःख प्रकट करते हुये कहा कि वे सार्क को वास्तविक एवं सकारात्मक रूप प्रदान करने के लिये कठिन कार्य कर रही थी ।[46]

इस बैठक में श्रीलंका ने बंगलादेश द्वारा मंत्रि परिषद के गठन के प्रस्ताव का "अकेले" विरोध किया । इस समय श्रीलंका एवं आम राष्ट्रों के मध्य सीधा विरोध उभरकर आया । श्रीलंका का मानना था कि संस्थात्मक ढांचे का विकास, आर्थिक सहयोग की योजनाओं के आधार पर कुछ परिणाम प्राप्त कर लेने के बाद ही उचित होगा, इसलिये राजनीतिक ढांचे से पूर्व आर्थिक सहयोग को प्राथमिकता दी जानी चाहिये । सर्वप्रथम आपसी साझीदारी एवं विश्वास तथा राजनीतिक इच्छा पैदा करना आवश्यक है ।[47]

श्रीलंका के विदेश सचिव डब्ल्यू टी जयसिंघे ने कहा कि "इस समय हम संदेहग्रस्त हैं इसलिये सार्क के विस्तार का यह उचित समय नहीं है । चाहे वह सार्क मंत्रि परिषद की रचना हो या अन्य किसी संस्थात्मक ढाँचे की स्थापना हो । यह तभी उचित होगा जब हम आपसी समझ एवं मतैक्य स्थापित करलें । सार्क अभी अपरिपक्व है ।"[48]

पाकिस्तान इस समय सार्क के संस्थात्मक ढाँचे के निर्माण हेतु सर्वाधिक उत्साहित था । पाकिस्तान इसलिये सर्वाधिक रूचि ले रहा था कि इस समय क्षेत्र में भारत विरोध की नीति काफी बड़े पैमाने पर उभरकर आया था, जिसमें उसे लाभ प्राप्त होने की अधिक संभावनायें थी ।

इसमें 1985-86 के बजट हेतु वित्त की घोषणा की गयी तथा तकनीकी समितियों ने अपनी रिपोर्ट प्रेषित की ।

स्टैंडिंग कमेटी का चौथा सत्र थिम्पू 10-11 मई 1985-

10 और 11 मई 1985 को भूटान की राजधानी थिम्पू में स्टैंडिंग कमेटी की बैठक का क आयोजन भूटान के विदेश सचिव दाशो टी. तोबग्येल की अध्यक्षता में किया गया । यह मीटिंग तीसरे विदेश मंत्री सम्मेलन की पूर्व तैयारी हेतु आयोजित की गयी । इसमें तकनीकी समितियों में रिपोर्ट प्रेषित की तथा 1985-86 के सार्क बजट हेतु वित्त की निम्न प्रकार व्यवस्था की गयी-

बंगला देश	-	7.5 मि.टका
भूटान	-	1.5 मि.
भारत	-	10 मि.रू.
मालदीव	-	84000 रूफियाज
नेपाल	-	2.5 मि.रू.
पाकिस्तान	-	101 मि.रू. + 5 लाख छात्रवृतियों हेतु

श्रीलंका - 3 मि.रू.

प्रथम सार्क शिखर सम्मेलन के विषय में विचार-विमर्श किया गया ।

सार्क विदेश मंत्रियों की तीसरी बैठक-थिम्पू।13 और 14 मई 1985।-

13 और 14 मई 1985 को भूटान की राजधानी थिम्पू में तीसरी विदेश मंत्री स्तर की बैठक का आयोजन ढाका में होने वाले प्रथम शिखर सम्मेलन की पूर्व तैयारी के लिये विचार-विमर्श हेतु किया गया । इसका उद्घाटन भूटान नरेश जिग्मे सिग्वे वांगचुक ने किया ।[49]

इस बैठक की शुरूआत श्रीलंका द्वारा बहिष्कार करने के निर्णय के कारण चिडचिडे वातावरण में हुयी । 10 मई 1985 को श्रीलंका के विदेश मंत्री हमीद ने घोषणा की कि श्रीलंका 13 मई से होने वाले सम्मेलन में भाग नहीं लेगा । यह निर्णय राज्यसभा में भारत के विदेश राज्य मंत्री खुर्शीद आलम खान के वक्तव्य के विरोध में लिया गया है ।[50] खुर्शीद आलम खान ने 11 अप्रेल 1985 को श्रीलंका की जातीय समस्या से उत्पन्न स्थिति पर टिप्पणी करते हुये राज्यसभा में कहा था कि- "श्रीलंका में स्थिति शोचनीय, पाशविक, बर्बर, क्रूर एवं अमानवीय बनी हुयी है ।" श्रीलंका सरकार ने खान के वक्तव्य पर खेद व्यक्त करने एवं क्षमायाचना की भारत सरकार को पेशकश की।[51] हमीद ने कहा कि- "मैं सोचता हूँ कि इस वक्तव्य में सम्मान एवं शिष्टाचार का अभाव था । नियमों के अनुसार द्विपक्षीय विवाद सार्क की बैठक में नहीं उठाये जा सकते, इसलिये हम इससे बाहर रहकर अपना विरोध व्यक्त कर रहे हैं । हालांकि इसके बावजूद हम सार्क से जुड़े रहेंगे । वर्तमान स्थिति में बैठक में भाग लेना असंभव है ।"[52] बंगला देश के विदेशी मामलों के सलाहकार हुमायूँ रशीद चौधरी ने इसे सार्क के समक्ष वास्तविक संकट पैदा होना बताया है ।[53]

श्रीलंका द्वारा भारत के वक्तव्य के विरोध में सार्क के बहिष्कार के निर्णय को आदर्शपूर्ण नहीं माना जा सकता था, क्योंकि इससे भविष्य में क्षेत्रीय सहयोग के अस्तित्व पर एक प्रश्न चिन्ह लग जाता है ।

श्रीलंका ने अपने इस निर्णय को राजीव गांधी, जियाउल हक तथा इरशाद के द्वारा राष्ट्रपति जयवर्धने से सीधा सम्पर्क स्थापित कर लेने के बाद बदल दिया । 13 मई को श्रीलंका के विदेश सलाहकार एसमंड विक्रम सिंघे तथा भारत स्थित श्रीलंका के राजदूत बर्नार्ड तिलकरत्ने द्वारा बैठक में भाग लेने के बाद ही संकट टाला जा सका ।[54] लेकिन विदेश मंत्री के स्थान पर इन्हें भेजना भी एक अपमानजनक कदम माना जा सकता है ।

श्रीलंका के कार्टूनिस्ट "इक्बाल" ने 12 मई 1985 को "सन" में अपने कार्टून में श्रीलंका के बहिष्कार को चित्रित करते हुये स्पष्ट किया कि तमिल समस्या की जलती हुयी आग में भारत के गिलोल प्रहार से सार्क के झुंड को एक साथ उड़े ले जा रहे सात पक्षियों में से एक 'श्रीलंका' गिरकर नष्ट हो रहा है ।[55] इससे यह स्पष्ट होता है कि इस प्रकार की गतिविधियां सार्क भावना के विरुद्ध एवं उसे कमजोर बनाने वाली नींव की ईंट साबित हो सकती है ।

श्रीलंका ने इस बैठक में सार्क मंत्रिपरिषद तथा सार्क को दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन के रूप में परिवर्तन करने पर असहमति व्यक्त करते हुये कहा कि इसके लिये अभी और अधिक विचार-विमर्श की आवश्यकता है । मंत्रिपरिषद के गठन के सम्बन्ध में श्रीलंका का दृष्टिकोण अन्य छः राष्ट्रों से भिन्न था ।[56]

इस बैठक में 7 और 8 दिसम्बर 1985 को ढाका में प्रथम शिखर सम्मेलन के आयोजन पर सहमति हुयी ।

स्टैंडिंग कमेटी का पाँचवा सत्र- ढाका 14 दिसम्बर, 1985।-

4 दिसम्बर 1985 को शिखर सम्मेलन की पूर्व तैयारी हेतु बंगला देश की राजधानी ढाका में स्टैंडिंग कमेटी की पाँचवी मीटिंग आयोजित की गयी। इसमें सार्क का प्रतीक चिन्ह, चार्टर, लक्ष्य एवं सिद्धान्तों को अंतिम स्वीकृति हेतु प्रारूप तैयार किया गया। प्रारूप घोषणा पत्र निर्मित किया गया। अब्दुल अहसान (बंगलादेश के राजदूत) सार्क घोषणा पत्र की प्रारूप समिति के अध्यक्ष बनाये गये। कम्पूचिया एवं अफगानिस्तान जैसे विवादग्रस्त राजनीतिक मुद्दों को कार्यवाही से बाहर रखा गया। स्टैंडिंग कमेटी ने अपनी रिपोर्ट विदेश मंत्रियों को प्रेषित की।[57]

सार्क विदेश मंत्रियों की चौथी बैठक- ढाका 15 दिसम्बर, 1985।-

5 दिसम्बर 1985 को ढाका में एक दिवसीय विदेशमंत्रियों की चौथी मीटिंग का आयोजन शिखर सम्मेलन की तैयारी हेतु किया गया, जिसके अध्यक्ष बंगला देश के विदेशमंत्री हुमायूं रसीद चौधरी बनाये गये। इसमें सार्क सचिवालय खोले जाने पर विचार-विमर्श हुआ। संयुक्त कार्यवाही योजना (Integrated Programme of Action) की घोषणा की गयी। दूर संचार एवं हवाई यातायात व्यवस्था की स्थापना पर जोर दिया गया। सार्क घोषणा पत्र को स्वीकृति प्रदान की। अणविक शस्त्रास्त्रों के निर्माण तथा परीक्षण पर रोक की अपील की। नशीले पदार्थों एवं आंतकवाद पर रोक के लिये कदम उठाये जाने पर विचार विमर्श हुआ। सार्क घोषणा पत्र में मुख्य लक्ष्य आर्थिक, सामाजिक विकास तथा मानव कल्याण रखा गया। सार्क संगठन के गठन को क्षेत्र में शांति, मित्रता और समझदारी का नया युग बताया।[58]

नेपाल के विदेश मंत्री रंधीर सुभा ने कहा कि- दक्षिण एशिया में आर्थिक सहयोग आपसी समझ एवं उन्नति के लिये नये युग की तरफ एक महत्वपूर्ण

कदम है । भारत के विदेश मंत्री बलीराम भगत ने सार्क के सचिवालय की स्थापना को आवश्यक बताया ।[59]

श्रीलंका के विदेश मंत्री ए.सी.एस.हमीद ने कहा कि संगठन का एक लक्ष्य क्षेत्रीय राजनीतिक स्थायित्व होगा । श्रीलंका के समक्ष राजनीतिक स्थायित्व के मार्ग में सबसे बड़ा खतरा आतंकवाद है । क्षेत्र की सरकारों को सीमा के आर-पार आतंकवाद की समस्या की तरफ ध्यान देना चाहिये । श्रीलंका सार्क राष्ट्रों में एक ऐसा राष्ट्र है जो सीमा के बाहर से संचालित आतंकवाद से ग्रसित है । आतंकवादी दक्षिणी भारत में शरण लिये हुये हैं । चूंकि श्रीलंका व्यक्तिगत रूप से इस समस्या से ग्रसित है इसलिये इस समस्या का समाधान शिखर सम्मेलन में क्षेत्रीय सहयोग के माध्यम से खोजा जाना चाहिये । क्षेत्रीय राजनीतिक स्थायित्व के बाद ही सही मायने में हम आर्थिक सहयोग की तरफ कदम बढ़ा सकते हैं । अंतर्राष्ट्रीय समाज अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद एवं नशीले पदार्थों के दुरूपयोग की चुनौतियों से घिरा हुआ है ।[60]

प्रथम सार्क शिखर सम्मेलन- ढाका (7-8 दिसम्बर 1985)-

7 और 8 दिसम्बर 1985 को ढाका में सार्क के प्रथम शिखर सम्मेलन के आयोजन को महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कदम माना गया । इसमें सार्क के संगठन, ढांचे, चार्टर, लक्ष्य एवं सिद्धान्तों को औपचारिक रूप से अंतिम स्वीकृति प्रदान करके सार्क संगठन पर सातों राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्षों ने मुहर लगा दी ।

इसमें बंगला देश के राष्ट्रपति एच.एम.इरशाद, जो कि अध्यक्ष थे, पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल जियाउल हक, मालदीव के राष्ट्रपति मौमून अब्दुल गयूम, भूटान नरेश जिग्मे सिंग्वे वांगचुक, नेपाल नरेश वीरेन्द्र विक्रमशाह देव, श्रीलंका के राष्ट्रपति जूनियस जयवर्धने तथा भारत के प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने भाग लिया।[61]

एच.एम.इरशाद ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि- हम दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग की चौखट पर खड़े हैं। सार्क नीति हमारे सहयोग की स्पष्ट समझदारी पर आधारित है।[62]

भूटान नरेश जिग्मे सिग्वे वांगचुक ने कहा कि- अपने लोगों की संयुक्त आशाओं और आकांक्षाओं को पूरा करने के लिये राजनीतिक इच्छा के वशीभूत हम शिखर स्तर पर एक-दूसरे के साथ करीब आये हैं। भूतकालीन मनोवैज्ञानिक एवं भावनात्मक बाधायें रुकावट पैदा नहीं करेंगी बल्कि वर्तमान की चिंतायें एवं डर ही बाधा पैदा कर सकते हैं।[63]

राजीवगांधी ने कहा कि- इस बात की हमें खुशी है कि हम दक्षिण एशिया परिवार के सदस्य हैं। हम अपने द्विपक्षीय सम्बन्धों को संयुक्त क्षेत्रीय पहचान के लिये नहीं छोड़ सकते लेकिन अपनी विदेश नीतियों के संदर्भ में अन्य दिशाओं में क्षेत्रीय सहयोग स्थापित कर सकते हैं।

मालदीव के राष्ट्रपति अब्दुल गयूम ने कहा कि- हम दक्षिण एशिया सहयोग की अवधारणा से पूर्णरूपेण जुड़े रहेंगे और सम्पूर्ण रूप में इसके आदर्शों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने की कोशिश करेंगे।

नेपाल नरेश वीरेन्द्र ने कहा कि- लम्बे समय से व्याप्त भ्रम, स्खलन एवं आशंकाओं के बाद दक्षिण एशिया में नये युग की शुरूआत हुयी है।[64]

पाकिस्तानी राष्ट्रपति जियाउल हक के अनुसार- दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग सातों राष्ट्रों के सामूहिक प्रयत्नों का प्रतिफल है।

श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने ने कहा कि- जहाज चल चुका है, आशा है इस पर विद्रोह नहीं होगा। क्षेत्रीय सहयोग दक्षिण एशिया के लाखों लोगों की मदद के लिये गठित किया गया है।[65]

इस बैठक में शिखर सम्मेलन के प्रतिवर्ष आयोजन पर सहमति हुयी । अगला शिखर सम्मेलन नवम्बर 1986 में बैंगलोर में होगा । इसमें सार्क के प्रतीक चिन्ह, संयुक्त कार्यवाही योजना तथा 1986 की कार्यवाहियों को स्वीकृति प्रदान की गयी । मंत्रि परिषद का गठन किया गया । द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय विवादग्रस्त मुद्दे कार्यवाही से बाहर रखे गये । स्थायी सचिवालय खोले जाने पर सहमति हुयी । आतंकवाद एवं नशीले पदार्थों की रोकथाम के लिये विशेषज्ञों की समितियों का गठन किया गया । सचिवालय, काठमांडू में बनाये जाने पर विचार विमर्श हुआ । निर्गुट आंदोलन एवं संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करने पर सहमति हुयी । सार्क संगठन के चार्टर में सभी राष्ट्रों की सहमति से परिवर्तन का सिद्धान्त अपनाया, इस प्रकार सभी राष्ट्रों को "वीटो" शक्ति प्रदान की गयी ।[66]

प्रथम शिखर सम्मेलन में पाकिस्तान द्वारा डाक टिकिट जारी करने का समारोह भारत के विरोध के कारण रद्द करना पड़ा क्योंकि इसमें कश्मीर का विवादाग्रस्त क्षेत्र पाकिस्तान द्वारा अपना दर्शाया गया था । इसका भारत ने विरोध किया ।[67]

इसके लक्ष्य एवं सिद्धान्त नई दिल्ली घोषणा की तरह ही रखे गये । चार्टर में एक निश्चित समय में सचिवालय की स्थापना पर स्वीकृति हुयी । तकनीकी समिति, स्टैंडिंग समिति तथा मंत्रि परिषद की रचना की गयी ।

मंत्रिपरिषद

इसके सदस्य सातों राष्ट्रों के विदेश मंत्री होंगे, जो निम्न कार्य करेंगे-

1- संस्था के लिये नीतियों का निर्धारण ।
2- संस्था के अंतर्गत सहयोग की प्रगति पर पुर्नविचार ।
3- सहयोग के नये क्षेत्र तय करना ।
4- आवश्यकता होने पर नवीन सहायक मशीनरी की स्थापना ।
5- संस्था के लिये अन्य सामान्य हितों के मामलों को तय करना ।[68]

क्षेत्रीय सहयोग को "दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन" नाम दिया गया । इसका मुख्य लक्ष्य आर्थिक और सामाजिक विकास रखा गया । श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने ने कहा कि दक्षिण एशिया के सभी राष्ट्र अंग्रेजी बोलते हैं इसलिये संचार एवं माध्यम के रूप में अंग्रेजी का विकास किया जाना चाहिये ।

सार्क संगठन की मंत्रि परिषद की प्रथम बैठक- ढाका 12-13 अगस्त, 1986

सार्क संगठन की मंत्रि परिषद की प्रथम बैठक 12 और 13 अगस्त, 1986 ढाका में आयोजित की गयी । यह बैठक नवम्बर 1986 में होने वाले दूसरे शिखर सम्मेलन की पूर्व तैयारी हेतु बुलायी गयी ।[69] इसके अध्यक्ष बंगला देश के विदेश मंत्री हुमायूं रशीद चौधरी बनाये गये तथा उद्घाटन बंगला देश के राष्ट्रपति एच.एम.इरशाद ने किया । इस बैठक में संयुक्त कार्यवाही योजना पर पुनर्विचार वित्तीय प्रबन्ध तथा विषय क्षेत्रों पर विचार किया गया । इससे पूर्व स्टैंडिंग कमेटी की औपचारिक बैठक 10 और 11 अगस्त को आयोजित की गयी । इसके अध्यक्ष बंगला देश के विदेश सचिव फखरुद्दीन अहमद बनाये गये । काठमांडू में सचिवालय बनाये जाने पर सहमति हुयी, जिसे द्वितीय शिखर सम्मेलन में अंतिम रूप दिया जायेगा । आतंकवाद एवं नशीले पदार्थों पर गठित विशेषज्ञों की समितियों ने अपनी रिपोर्ट प्रेषित की ।[70] इस बैठक में 1986-87 के बजट हेतु निम्न व्यवस्था की गयी-

बंगलादेश	-	7.5 मि.टका
भारत	-	10 मि.रू.
नेपाल	-	3.5 मि.रू
पाकिस्तान	-	10 मि.रू. + 5 लाख छात्रवृत्तियों हेतु

श्रीलंका के विदेश मंत्री ए.सी.एस.हमीद ने कहा कि- सार्क अब एक

वास्तविकता है जिस पर बंगला देश गर्व कर सकता है । आतंकवाद विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट उनके राष्ट्र के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण हो सकती है ।[71]

राष्ट्रपति इरशाद ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि- "सार्क संगठन से हमारे लगाव का मतलब हमारे लोगों के प्रति लगाव से है ।"[72]

इस मीटिंग में आतंकवाद पर भारत एवं श्रीलंका के मध्य गंभीर मतभेद देखे गये ।[73] बंगला देश के विदेश मंत्री हुमायूं रशीद चौधरी ने कहा कि अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक मुद्दे एवं स्त्रियों के विकास के बारे में स्टैंडिंग कमेटी ने विचार विमर्श किया । स्त्रियों के विकास क्षेत्र को एक नये विषय के बारे में विचार विमर्श किया जा रहा है, इसके लिये एक अलग तकनीकी समिति का गठन किया जायेगा ।

ढाका में क्षेत्रीय कृषि सूचना बैंक एवं भारत में मौसम अनुसंधान केन्द्र स्थापित करने का निर्णय लिया गया । बच्चों की समस्याओं पर भी विचार विमर्श किया गया । बच्चों के लिये नई दिल्ली में सार्क सम्मेलन के आयोजन की सिफारिश की गयी ।[74]

इस बैठक के अंत में जारी एक संयुक्त विज्ञप्ति में निम्न बातों पर सहमति प्रकट की गयी:-

1- सार्क देशों का सचिवालय नेपाल की राजधानी काठमांडू में स्थापित किया जायेगा, जिसकी पुष्टि द्वितीय शिखर सम्मेलन में की जावेगी ।

2- सचिवालय का महासचिव दो वर्ष के लिये वर्णमाला के अनुसार चुना जायेगा । इस प्रकार प्रथम महासचिव बंगला देश का होगा । बाद में घोषित किया कि अब्दुल अहसान इसके प्रथम महासचिव होंगे । द्वितीय शिखर सम्मेलन में इसे औपचारिक मंजूरी प्रदान की जावेगी ।

3- आपसी लाभ हेतु मिलकर और अधिक सहयोग पर सहमति व्यक्त की गयी ।

4- अधिक सार्थक कार्यक्रम बनाये जाने पर जोर दिया गया ।

5- आतंकवाद की व्याख्या करने के लिये विशेषज्ञों की शीघ्र ही बैठक बुलायी

जायेगी और इसके अंतर्गत देश से निष्काषित लोगों को राजनैतिक अपराधी नहीं माना जायेगा ।

6- क्षेत्रीय कृषि सूचना केन्द्र बंगला देश तथा मौसम की जानकारी हेतु केन्द्र भारत में खोले जायेंगे ।[75]

इस बैठक का महत्त्व बताते हुये पाकिस्तान के विदेश मंत्री साहबजादा याकूब खान ने कहा कि सार्क मंत्रि परिषद की प्रथम मीटिंग आपसी समझदारी एवं भाईचारे पूर्ण सम्बन्ध की दृष्टि से एक बहुत बड़ा कदम है । सार्क मजबूती और एकता का प्रतीक है ।[76]

इस प्रकार सार्क का विकास शनैः शनैः प्रगति की ओर अग्रसर होता गया । यद्यपि कालांतर में सदस्यराष्ट्रों के बीच बड़े पैमाने पर मतभेद उभरकर सामने आये हैं । परंतु फिर भी सदस्य राष्ट्र सार्क भावना से प्रेरित होकर समस्याओं एवं संकटों को सुलझाने में सफल हुये हैं । अब जबकि सार्क को संस्थात्मक रूप प्रदान किया जा चुका है, आवश्यकता इस बात की है कि आपसी सहयोग एवं लाभ हेतु इसको मजबूती प्रदान की जाये ।

CHAPTER - III

1. "Notes and Comments" India Quarterly (New Delhi) Vol.XL Nos. 3 & 4 July-Ded.1984 pp. 332-34.
2. Ibid.
3. S.P.Amarasingham- Wither South Asia?" Ed.Tribune (Colombo) Vol.25 No.40 May 2,1981 pp.2-4.
4. Ibid.
5. Ibid.
6. Ibid.
7. Ibid.
8. Asian Recorder (New Delhi) Vol.XXVII No.28, July 9-15, 1981, pp. 16121-22.
9. Ibid.
10. Ibid.
11. "Notes and Comments" India Quarterly (New Delhi) Vol.XL Nos. 3 & 4 July-Dec.1984 pp. 332-34.
12. Ibid.
13. Ibid. pp. 348-50.
14. Asian Recorder Vol.XXVIII No.4 Jan 22-28,1982,pp.16428-29.
15. "Notes and Comments" India Quarterly Vol.XL Nos. 3 & 4 July-Dec.84 pp.351-53.
16. Ibid.
17. Ibid.
18. Ibid- pp.360-62.
19. M.S.Agwani,Ed. "South Asian Regional Cooperation" in South Asia: Stability & Regional Cooperation (Chandigarh) 1983 pp. 139-41.
20. Ibid.

21. Pot (Bangladesh Series) Vol.VIII Part 135, July 22,1983 p.1248.

22. Ibid.

23. Ibid.

24. Ministry of External Affairs- SARC: Meeting of Foreign Ministers (New Delhi) 1983 p.59.

25. Ibid pp.7-8.

26. Ibid p.10.

27. Ibid p.10.

28. Ibid.

29. Ibid.

30. Ibid.

31. Ibid.

32. Ibid.

33. Pratap Kapur- SARC: Whither Regional Cooperation" Democratic World (New Delhi) Vol.XII No.35 Aug.28,1983 pp. 6-7,17.

34. Ministry of External Affairs- "SARC: Meeting of Foreign Ministers (New Delhi)1983 p.66.

35. Ibid. SARC:Stauding Committee First Session(New Delhi) 1984 pp. 31-32.

36. Ibid pp. 13-16.

37. Ibid p.32.

38. Ibid SARC: Meeting of Foreign Ministers Male,1984 p.50.

39. Ibid pp. 41-42.

40. Ibid pp. 48-49.

41. Ibid p.51

42. Pot (Bangladesh Series) Vol.IX Part 118 June 6,1984 p. 901.

43. Ministry of Foreign Affairs- SARC: Meeting of Foreign Ministers Male, 1984 pp.4-5.

44. Ibid pp.22-24.

45. Ibid pp.27-28.

46. "Notes and Comments" India Quarterly Vol.XL No. 3 & 4 July-Dec.1984 pp. 387-91.

47. Ibid.

48. Ibid.

49. Asian Recorder Vol.XXXI No.27 July 2-8, 1985 pp.18387-88

50. Sun May 11, 1985.

51. Sun May 9, 1985.

52. Ibid.

53. Weekend (Colombo) May 12,1985.

54. Sun May 13,1985.

55. Weekend May 12, 1985.

56. Times of India (New Delhi)May 15,1985.

57. Pot (Bangladesh Series) Vol.X No.240 Dec.6,1985 p.1919.

58. Ibid- Vol.X No.241 Dec.7,1985 pp. 1922-23.

59. Ibid.

60. Sun Dec.7, 1985.

61. Pot (Bangladesh Series) Vol.X No.242 Dec.9,1985,pp.1927-28.

62. Ibid p.1930.

63. Ibid.

64. Ibid pp. 1931-32.

65. Ibid Vol.X No.243 Dec.10,1985 p.1946.

66. Ibid Vol.X No.242 Dec.9, 1985 p.1933.

67. Sun Dec.10,1985

68. "SAARC: Prospect of Cooperation" India Quarterly Vol.XLII No.1 Jan-March 1986 pp.69-77.

69. The Bangladesh Times (Dhaka) Aug.11,1986.

70. Pot (Bangladesh Series) Vol.XI No.149 Aug.8,1986 pp. 1530-31.

71. Pot (Bangladesh Series) Vol.XI No.152 Aug.13,1986 pp. 1552-54.

72. Ibid- Vol. XI No.153 Aug.14,1986 pp.1562-65.

73. Ibid- p.1565.

74. Ibid - Vol.XI No.154 Aug.18,1986 pp.1572-73.

75. The Bangladesh Times, Aug.12, 1986.

76. The Bangladesh Times Aug.12,1986.

चतुर्थ अध्याय

श्री लंका एंव सार्क संगठन

पिछले तीन अध्यायों में सार्क के गठन के सम्बन्ध में सामान्य रूप से उल्लेख किया गया है । इस अध्याय में हम सार्क के प्रति श्रीलंका का व्यवहार एंव दृष्टिकोण क्या रहा है तथा उसका व्यवहार सार्क के सम्बन्ध में समय-समय पर क्यों परिवर्तित होता रहा है, इसको स्पष्ट करने का संक्षिप्त प्रयत्न करेंगे तथा यह भी देखेंगे कि किस प्रकार इस देश की आंतरिक समस्याओं ने सार्क के प्रति दृष्टिकोण एंव कार्यवाहियों को प्रभावित किया है । विशेष रूप से श्रीलंका की तमिल समस्या ने श्रीलंका एंव सार्क के सदस्य राष्ट्रों तथा सार्क संगठन के समक्ष एक अजीब संकट पैदा किया है । इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि सार्क संगठन के सदस्य राष्ट्र इस समस्या को सुलझाने या उलझने में बराबर रूप से सहभागी रहे हैं । इससे पूर्व कि श्रीलंका के दृष्टिकोण का सार्क के सम्बन्ध में सीधे रूप में जिक्र किया जाय, श्रीलंका की आंतरिक, भौगोलिक एंव सामरिक स्थिति के बारे में लिखना अत्यावश्यक हो जाता है क्योंकि उसके परिवर्तित दृष्टिकोण के मूल में इन्हीं परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है ।

श्रीलंका हिंदमहासागर के केन्द्र में बसा नाशपाती के आकार का एक छोटा सा द्वीप है जो भारत के दक्षिण में स्थित है । रामेश्वरम से तलाई मनार की दूरी मात्र 25 कि.मी. है तथा इसके तटप्रदेश की लम्बाई

600 कि.मी. है[1] इसे "लैंड आफ ज्वैल्स" तथा "आईलैण्ड आफ जैम्स" के नाम से भी पुकारा जाता है । ट्रिंकोमाली श्रीलंका का एक मुख्य प्राकृतिक बंदरगाह है, जो विश्व के कुछ गिने-चुने बंदरगाहों में से एक है । कोलम्बो भी एक मुख्य बंदरगाह है, जिससे लंदन 6725 मील, कलकत्ता 1244 मील, मद्रास 505 मील तथा बम्बई 875 मील दूर है ।[2]

श्रीलंका 65609 वर्ग कि.मी. (25332 वर्ग मील) क्षेत्र में बसा है, जिसकी उत्तर से दक्षिण की ओर लम्बाई 275 मील तथा पूर्व से पश्चिम की ओर चौड़ाई 160 मील है ।[3] 1981 की जनगणना के अनुसा यहाँ की कुल जनसंख्या (14,85000) है इनमें 74 प्रतिशत सिंहली, 12.6 प्रतिशत श्रीलंका के तमिल, 5.5 प्रतिशत भारतीय तमिल, 7.1 मूर्स (मुस्लिम) तथा 0.3 बर्गर्स हैं । धार्मिक रूप से यहाँ 69.3 प्रतिशत बौद्ध (जो सभी सिंहली हैं) 15.5 प्रतिशत हिन्दू (जो सभी तमिल हैं) 7.6 मुस्लिम एंव 7.6 ईसाई हैं । मुस्लिम समुदाय सिंहली बहुल क्षेत्रों में सिंहली एंव तमिल बहुल क्षेत्रों में तमिल बोलते हैं । तमिल मुख:यत श्रीलंका के उत्तरी एंव पूर्वी क्षेत्र में निवास करते है, जिनकी राजधानी जाफना है तथा सिंहली दक्षिणी, पश्चिमी एंव मध्य भाग में निवास करते है ।[4] तमिलों का खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा तथा ऐतिहासिक सम्बन्ध भारत के दक्षिणी राज्य तमिलनाडु की भाँति ही रहे हैं तथा दोनों स्थानों के लोग आपस में सांस्कृतिक रूप से जुड़े हुये है । श्रीलंका की भारत के नजदीक इस बहुजातीय समाज वाले राष्ट्र के रूप में सामाजिक एंव सांस्कृतिक व्यवस्था के कारण श्रीलंका के नीति निर्माताओं का मानना है कि "हम एक छोटे से द्वीप के निवासी है,

जो भारत से मात्र 20 मील दूर है । वह क्षेत्र में हमसे 50 गुना तथा जनसंख्या में 48 गुना अधिक है । भारत से हमारी भौगोलिक समीपता और सैनिक कमजोरी, भारत के साथ संघर्ष को पैदा करती है । इस प्रकार तो हमें अपनी विदेश नीति में भारत के साथ स्थायी युद्ध की प्रस्तावना लिख देनी चाहिये ।"[5] यही कारण है कि श्रीलंका के मस्तिष्क में स्थायी डर बैठ गया है । जैसा कि हम पिछले अध्याओं में भारत की दक्षिण एशिया में प्रभावी स्थिति के बारे में स्पष्टतः देख चुके है, इस प्रभावी स्थिति एंव भारत की श्रीलंका के साथ छेड़छाड़ के कारण अन्य पड़ौसी राष्ट्रों की भाँति श्रीलंका भी भारत से भयभीत रहा है । श्रीलंका की भारत विरोधी धारण को मजबूत बनाने के कई कारण रहे हैं, जैसे कि 1945 में जवाहरलाल नेहरू द्वारा श्रीलंका के भारतीय संघ में (नेहरू जी ने कहा था कि साम्प्रदायिक भाषायी और सांस्कृतिक आधार पर भारत और श्रीलंका समान है इसलिये श्रीलंका को भारतीय संघ की स्वायत इकाई बन जाना चाहिये।[6] विलय की आंकाक्षा प्रकट करना, 1971 में पाकिस्तान का विभाजन कराकर बंगलादेश का निर्माण करा देना, 18 मई 1974 को पोखरण में परमाणु विस्फोट करके परमाणु क्षमता प्राप्त कर लेना, 16 मई 1975 को सिक्किम को भारत के 22 वें राज्य के रूप में मिला लेना, भारतीय तमिलों की नागरिकता एंव समुन्द्री सीमा विवाद पर श्रीलंका पर दबाव डालते रहना तथा तामिल आंतकवादियों को शरण एंव प्रशिक्षण प्रदान करना आदि ।

श्रीलंका के नीति निर्माताओं का मानना है कि इतिहास में श्रीलंका पर दक्षिण भारत के राजाओं (चोल, पांड्य एंव पल्लवों) के आक्रमण, इस बात

का सबूत है कि भारत श्रीलंका के प्रति सद्भाव की नीति की उपेक्षा प्रारंभ से ही करता रहा है तथा जब जब उसे अवसर मिला है श्रीलंका के तमिलों को उकसावा देकर श्रीलंका में अस्थिरता पैदा करता रहा है ।[7] हालांकि श्रीलंका के नीति निर्माताओं की यह सोच सही नहीं मानी जा सकती, क्योंकि इस बात के कई उदाहरण देखने को मिलते हैं जबकि श्रीलंका में आंतरिक उथल-पुथल के समय भारत ने श्रीलंका की काफी मदद प्रदान की है । 1971 में जबकि भारत स्वंय पाकिस्तान से उलझा हुआ था , अप्रैल 1971 में श्रीमती सिरिमावो भंडारनायके की सरकार के विरूद्ध "जनता विमुक्ति पेरामुना" विद्रोह को दबाने में भारत ने सर्वप्रथम श्रीलंका को सैनिक सहायता भेजी । इस विद्रोह की भयावहता इसी बात से देखी जा सकती है कि इस संगठन के सदस्यों ने दो दिन में 93 पुलिस स्टेशनों पर आक्रमण किया । श्रीमती भंडारनायके की संयुक्त मोर्चे की सरकार ने इसे "प्रतिक्रियावादी शक्तियों के अभिकरण" की संज्ञा देते हुये कहा था कि यह "गुमराह युवकों" की राष्ट्र विरोधी प्रक्रिया है । इस विद्रोह के कारण श्रीलंका की व्यवस्था एंव आर्थिक स्थिति डगमगा गयी थी ।[8] भारतीय तथा अन्य राष्ट्रों की मदद से यह क्रान्ति असफल हो गयी । लेकिन थोडे दिनों बाद ही इस भारतीय सदभाव का मूल्य श्रीलंका ने बंगला देश स्वतन्त्रता युद्ध में पाकिस्तानी सेना को सुविधाप्रदान करके चुकाया । एक अन्य उदाहरण पाक जलडमरूमध्य में स्थित "कच्छतिवु" द्वीप का है(लगभग एक वर्गमील क्षेत्र), जिस पर पिछले दो दशकों से श्रीलंका एंव भारत के मध्य विवाद चल रहा था 26 जून 1974 को भारत ने श्रीलंका से समझौता करके इसलिये श्रीलंका को सौंप दिया, जिससे कि उसे यह विश्वास

दिलाया जा सके कि भारत पड़ौसी राष्ट्रो से सद्भाव पूर्ण, मित्रवत एंव अच्छे सम्बन्धों के विकास का समर्थक है, हालांकि इस पर मद्रास राज्य का कब्जा था तथा इसका भारत में अपने हितों का बलिदान बताते हुए काफी विरोध व्यक्त किया गया था ।[9] भारतीय सद्भाव का एक उदाहरण भारतीय तमिलों की नागरिकता सम्बन्धी विवाद को श्रीलंका की शर्तों पर ही सुलझा लेना भी माना जा सकता है । 15 जनवरी 1986 को स्वतन्त्रता के बाद से लगातार चले आ रहे इस विवादपूर्ण मसले को अंतिम रूप से सुलझा लिया गया ।[10]

वर्तमान में भारत एंव श्रीलंका के सम्बन्धों में एक अत्यन्त नाजुक मुद्दा श्रीलंका के तामिलों की पृथक "तामिल ऐलम" राज्य की मांग बनी हुयी है । इस समस्या ने श्रीलंका में विकराल रूप धारण कर लिया है तथा श्रीलंका की सेना एंव तामिल आंतकवादियों के मध्य गृहयुद्ध जैसी स्थिति पैदा हो गयी है । हालांकि तमिल यूनाइटेड लिबरेशन फ्रन्ट" के नेता ए. अमृतलिंगम ने भारत से मांग की थी कि "भारत ने जिस तरह से बंगलादेश के स्वतन्त्रता आंदोलन को समर्थन दिया, उसी तरह तामिल स्वतन्त्रता आंदोलन की मदद करनी चाहिये ।"[11] इसके बावजूद भारत ने हमेशा तामिल समस्या का राजनीतिक हल श्रीलंका की एकता एंव अखण्डता को बनाये रखकर किये जाने के प्रयत्न किये है । स्व. प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने स्पष्ट किया था कि वह इस समस्या का राजनीतिक हल खोजे जाने के पक्ष में हैं तथा भारत कभी भी किसी के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के पक्ष में नहीं रहा है ।"[12]

प्रधानमंत्री राजीवगांधी ने भी स्पष्ट घोषित किया है कि "श्रीलंका की जातीय समस्या का समाधान संघर्ष में नहीं समझौते में है। तामिल शरणार्थी भारत में शांतिप्रिय रूप से रह सकते हैं, उन्हें भारत से संघर्ष या गृहयुद्ध के संचालन की अनुमति नहीं दी जायेगी। श्रीलंका की सरकार द्वारा तामिलों को आंतरिक स्वायत्तता दी जानी चाहिये।"[13]

भारत ने इस समस्या को सुलझाने के लिये मध्यस्थता की नीति अपनायी है। इस कार्य हेतु श्रीमती गांधी ने अपने विशेष दूत के रूप में जी. पार्थसारथी को कोलम्बो भेजा। 10 जनवरी 1984 को उनके प्रयत्नों से आॅल पार्टी कान्फ्रेंस प्रथम बार आयोजित की गयी। स्व. प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी और जयवर्धन ने नवम्बर 1983 में कामनवैल्थ मीटिंग के दौरान नई-दिल्ली में मिले तथा दूसरी बार जून 1984 में जयवर्धने अमेरिका से लौटते श्रीमती गांधी से नई-दिल्ली होते हुये मिलकर आये।

राजीव गाँधी ने विदेश सचिव रोमेश भंडारी को अपने दूत के रूप में कई बार कोलम्बो भेजा[14] तथा राष्ट्रपति जयवर्धने एंव राजीव गांधी के मध्य। और 2 जून 1985 को नई दिल्ली में वार्ता हुयी, इसके बाद दोनों नेता एक साथ बंगलादेश में चक्रवात से पीडित लोगों को देखने के लिये बंगलादेश गये, जिसे बंगलादेश के राष्ट्रपति एच. एम. इरशाद ने "सार्क भावना" का नाम दिया।[15] प्रधानमंत्री राजीव गांधी के प्रयत्नों से ही तमिल आंतक वादी गुटों एंव श्रीलंका की सरकार के साथ जातीय समस्या के हल हेतु भूटान की राजधानी थिम्पू में जुलाई 1985 में वार्ताओं का आयोजन कराया[16]

लेकिन कभी तमिल नेताओं एंव कभी श्रीलंका की सरकार की हठी नीतियों के कारण कोई हल नहीं खोजा जा सकता । भारत के विदेश सचिव रोमेश भंडारी ने मार्च 1985 में कोलम्बो यात्रा के समय स्पष्ट किया था कि जातीय समस्या का राजनैतिक हल खोजे जाने के लिये सर्वप्रथम हिंसा रोकी जानी चाहिये तथा कोई भी हल श्रीलंका की एकता, संप्रभुता एंव अखंडता के अन्तर्गत ही खोजा जावें ।[17] भारत की इन कोशिशों के बावजूद श्रीलंका के राष्ट्रपति जे. आर. जयवर्धन एंव प्रधानमंत्री आर. प्रमदासा जैसे वरिष्ठ नेताओं ने भी यह आरोप लगाया है कि भारत तमिलों को तमिलनाडु में संरक्षण एंव प्रशिक्षण प्रदान करके, श्रीलंका में अस्थिरता पैदा कर रहा है ।[18] श्रीलंका के बौद्ध लोगों का मानना है कि भारत स्वंय को तमिलों का संरक्षक समझते हुये हमारे आतंरिक मामलों में हस्तक्षेप करता रहा है । श्रीलंका की जातीय समस्या में भारत की रुचि क्यों है इसके कई कारण माने जा सकते हैं । प्रथम, श्रीलंका की जातीय समस्या के कारण श्रीलंका के तमिल शरणार्थी लाखों की संख्या में तमिलनाडु में आकर जम गये है जिसके कारण राज्य के समक्ष गंभीर आर्थिक संकट पैदा हुआ है ।[19]

दूसरे, श्रीलंका सेना द्वारा लगातार तमिलों की हत्या एंव तमिल विरोधी आतंकवाद के विरोध में तमिलनाडु में तोड-फोड़ एंव हड़तालों के आयोजन से राष्ट्र के समक्ष संकट पैदा हुआ है । तमिलनाडु की आल इंडिया द्रविड मुनेत्र कषगम सरकार तथा द्रविड मुनेत्र कषगम सहित सभी विपक्षी दलों ने श्रीलंका में तमिलों का नरसंहार रोके जाने हेतु केन्द्र सरकार द्वारा हस्तक्षेप किये जाने के लिये दबाव डाला जा रहा है । तमिलनाडु की सभी राजनैतिक पार्टिया श्रीलंका के तमिलों की संघात्मक व्यवस्था की मांग एंव तमिल भाषा

को समानता का स्तर प्रदान किये जाने की मांगों को न्यायोचित मानती रही है । डी. एम. के. तल्फ की 1976 से पृथक "तमिल ऐलम" राज्य की मांग का समर्थन करती रही है । तथा केन्द्र सरकार पर श्रीलंका की जातीय समस्या के लिये सैनिक हस्तक्षेप हेतु भी दबाव डालती रही है ।[20]

तीसरा कारण, श्रीलंका की जातीय समस्या से उत्पन्न अस्थिरता एंव बाह्य शक्तियों के श्रीलंका में जमाव के कारण भारत अपनी सुरक्षा के प्रति संकट महसूस कर रहा है । 1977 के बाद जयवर्धने द्वारा खुली अर्थव्यवस्था तथा जुलाई 1983 के बाद से जातीय समस्या की आड़ में पश्चिमी शक्तियों को आर्थिक एंव सैनिक छूट प्रदान करके भारत के समक्ष श्रीलंका ने वैचारिक मतभेद को प्रोत्साहन दिया है, जो भारतीय सुरक्षा दृष्टिकोण के विरूद्ध दृष्टिगोचर होता है । जुलाई 1983 के दंगों के बाद अमेरिकी रक्षा सचिव कास्पर वाइनबर्गर तथा उसके बाद वर्नोन वाल्टर्स , सीनेटर अद्धावों, दक्षिण एशिया के अमेरिकी सहायक सचिव हावडीमर की श्रीलंका यात्रा से यह स्पष्ट होता है कि श्रीलंका की सरकार एंव बाह्य शक्तियाँ श्रीलंका की जातीय समस्या को क्षितिजीय राजनीति के शिकंजे में जकड़कर उलझाने की कोशिश में संलग्न है ।[21] यह स्थिति भारत के समक्ष एक गंभीर खतरा पैदा करने का षड़यन्त्र मानी जा सकती है । जयवर्धने स्वंय भी जून 1984 में अमेरिकी यात्रा पर गये ।[22] श्रीलंका के सैनिकों को इजरायली खुफिया एजेन्सी मोशाद द्वारा प्रशिक्षण प्रदान करना तथा श्रीलंका द्वारा इजरायल को कोलम्बो स्थित अमेरिकी दूतावास में अपना आफिस खोलने देना भी श्रीलंका की परिवर्तित नीति की तरफ स्पष्ट इंगित करता है ।[23]

इन्हीं कारणों से भारत ने श्रीलंका की जातीय समस्या के शीघ्रातिशीघ्र हल हेतु मध्यस्थम की नीति अपनायी है ।

श्रीलंका यह जानते हुये भी कि भारत श्रीलंका में किसी बाह्य शक्ति के जमाव को अपनी सुरक्षाके लिये खतरा समझता है, श्रीलंका ने ट्रिंकोमाली में अमेरिकी, ब्रिटिश एंव स्विस् कम्पनियों को तेल टैंक बनाने की छूट प्रदान की है तथा उसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी भी अमेरिकी कम्पनी पर छोड़ दी है । कोलम्बो के नजदीक अमेरिका को "वायस आफ अमेरिका" के 6 शक्तिशाली ट्रांसमीटर लगाये जाने की छूट भी प्रदान की है । पाकिस्तान से श्रीलंका की तटीय सुरक्षा के लिये सैनिक प्रकार की गनबोट प्राप्त की है ।[24]

भारतीय डर एंव आक्रमण की आड़ में श्रीलंका सरकार ने अमेरिका, चीन, ब्रिटेन, इजरायल, सउदी अरब, पाकिस्तान एंव बंगलादेश से सैनिक मदद प्राप्त करके भारतीय सुरक्षा पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है । भारत यह बार-बार स्पष्ट करता रहा है कि श्रीलंका और भारत की सुरक्षा एक दूसरे से जुड़ी हुयी है, इसलिये भारत का श्रीलंका की सुरक्षा के लिये चिंतित होना स्वाभाविक है क्योंकि भारत पर पश्चिमी शक्तियों ने आधिपत्य इसी रास्ते से जमाने में सफलता प्राप्त की थी । इसी आशय को स्पष्ट करते हुये 1974 में भारतीय नौसेना के कमाण्डर ने भी कहा था कि -श्रीलंका भारत के लिये सामरिक दृष्टि से उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कि आयरलैण्ड ब्रिटेन के लिये या ताइवान चीन के लिये अगर किसी महाशक्ति ने कभी श्रीलंका पर प्रभाव जमाया तो भारत अपनी सुरक्षा को ध्यान में रखते हुये तथा क्षेत्रीय एकता के लिये इसको अनदेखा नहीं कर सकेगा ।[25]

बाह्य शक्तियां भी इस बात को स्पष्ट रूप से समझती हैं इसिलिये श्रीलंका की जातीय समस्या की आड़ में शक्ति संतुलन की स्थापना के लिये श्रीलंका में भारत विरोधी भाव को उकसावा एंव समर्थन प्रदान कर रही हैं। यही कारण है कि श्रीलंका की सरकार श्रीलंका की जातीय समस्या का हल खोजने में अपनी कठोर शर्तों पर अड़ी हुयी है। पड़ौसी राष्ट्र भी भारत पर दबाब बनाये रखने के लिये इस समस्या का स्तेमाल हथियार के रूप में कर रहे हैं। पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल जिया उलहक ने 9 से 15 दिसम्बर 1985 के दौरान अपनी श्रीलंका यात्रा के समय कहा था कि - पाकिस्तान श्रीलंका की किसी भी प्रकार की मदद के लिये अपने कदम पिछे नहीं खीचेगा तथा उसको हर संभव मदद प्रदान करेगा, यदि पाकिस्तान शस्त्रों का निर्माता या व्यापारी होता तो वह सभी हथियार आतंकवाद के विरूद्ध श्रीलंका को प्रदान कर देता।[26]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि श्रीलंका का सुरक्षा दृष्टिकोण भी अन्य पड़ौसी राष्ट्रों की भांति भारत के दृष्टिकोण से भिन्न है। फलस्वरूप श्रीलंका भारतीय प्रभाव के विरूद्ध अमेरिका एंव पश्चिमी शक्तियों की तरफ कदम बढ़ा रही है। चाहे 1971 का भारत-पाक युद्ध हो, 1974 का परमाणु विस्फोट हो, 1975 में सिक्किम का भारत में विलय हो या फिर अफगानिस्तान में सोवियत रूस का हस्तक्षेप हो, श्रीलंका का व्यवहार एंव दृष्टिकोण "अमेरिका-पाक-चीन" धुरी के समकक्ष रहा है। बाह्य शक्तियां भी श्रीलंका के हिंद महासागर के मध्य में स्थित होने तथा भारत पर दबाब बढ़ाने के लिये श्रीलंका से सम्बन्ध सुधारने में लगी हुयी है, जिसका प्रभाव भारत श्रीलंका सम्बन्धों पर स्वाभाविक रूप से पड़ता रहा है। यही कारण था

कि श्रीलंका आरंभ में "सीटो" की सदस्यता के लिये अत्यन्त उत्सुक था ।[28] दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग को मजबूत बनाये जाने के स्थान पर श्रीलंका अभी भी पश्चिमी झुकाव वाले "एशियान गुट में शामिल होने के प्रयत्नों में लगा है । 29 मई 1981 को श्रीलंका ने इसकी सदस्यता के लिये आवेदन पत्र भी प्रेषित किया था लेकिन 11 जून 1982 को "एशियान" की स्टैंडिंग कमेटी के अध्यक्ष सिंगापुर के विदेश मंत्री ए. धानबालान ने भौगोलिक आधार पर श्रीलंका को "एशियान" की सदस्यता दिये जाने से इंकार कर दिया ।[29] श्रीलंका 1967 के बाद से ही "एशियान" की सदस्यता के प्रति उत्सुकता जाहिर करता रहा है । श्रीलंका के प्रधानमंत्री प्रेमदासा का कहना है कि - "श्रीलंका के लक्ष्य (आंतरिक एंव बाहरी दोनों रूपों में) एशियान राज्यों के लक्ष्यों से मिलते है तथा कीमतों में स्थिरता एंव आर्थिक लाभ हेतु "एशियान" से सम्बन्ध जोड़ना महत्त्वपूर्ण साबित होगा ।[30]

उपरोक्त पृष्ठभूमि में सार्क संगठन के सम्बन्ध में श्रीलंका के व्यवहार को समझने की संक्षिप्त कोशिश अग्रलिखित पृष्ठों में की गयी है -

हालांकि दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग की स्थापना की कार्यवाहियों में श्रीलंका 1947 से ही भाग लेता रहा है, लेकिन श्रीलंका के दृष्टिकोण एंव भारत के दृष्टिकोण में तभी से ही छुटपुट मतभेद स्पष्ट रूप से देखे जा सकते है । नई दिल्ली में 23 अप्रेल से 2 मई 1947 को आयोजित एशियाई राष्ट्रों के सम्मेलन के दौरान श्रीलंका के 15 सदस्यों के दल का नेतृत्व करते हुये सोलोमन भंडारनायके ने कहा था कि - "मैं महसूस करता हूं कि हमारे देश की भौगोलिक स्थिति दक्षिण पूर्व एशिया में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । यह सत्य है कि हम एक

छोटे राष्ट्र है तथा अपनी रक्षा बड़े राष्ट्रो से करने में स्वंय को कठिनाई में पाते है । इसके बावजूद हम भौगोलिक, आर्थिक एंव सांस्कृतिक रूप से जुड़े होने के कारण व्यापारिक समझौता करके लाभ उठा सकते हैं । आपसी एकता के माध्यम से हम द्विपक्षीय एंव बहुपक्षीय सम्बन्धों में विकास कर सकते है ।[31] इससे यह स्पष्ट है कि श्रीलंका के मस्तिष्क में भारतीय डर आरंभ से ही बैठा हुआ था, इसी कारण स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी ब्रिटेन के साथ 1947 में श्रीलंका ने सुरक्षा समझौता करके अपनी सुरक्षा का भार ब्रिटिश सरकार की देखरेख में ही छोड़ दिया तथा प्रधानमंत्री डी. एस. सेनानायके ने कहा कि "ब्रिटेन के साथ मित्रता श्रीलंका की सुरक्षा की महान गारंटी है ।[32]

कोलम्बो सम्मेलन (अप्रैल-मई 1954)

अप्रैल-मई 1954 में श्रीलंका की राजधानी कोलम्बो में भारत, पाकिस्तान, बर्मा, इंडोनेशिया और श्रीलंका के राष्ट्राध्यक्षों ने क्षेत्र के आर्थिक विकास हेतु तथा आपसी सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने के लिये एक बैठक का आयोजन किया । इस सम्मेलन में भी साम्यवाद के सम्बन्ध में भारत एक तरफ तथा श्रीलंका एंव पाकिस्तान दूसरी तरफ रहे । श्रीलंका के प्रधानमंत्री सर जान कोटलेवाला ने इसमें साम्यवादी उपनिवेशवाद की खुलकर आलोचना की, जबकि नेहरू जी का मानना था कि- "साम्यवाद विरोध का अर्थ होगा ऐंग्लो-अमेरिकन गुट का समर्थन, जो हमारी असंलग्नता की नीति के विरूद्ध है।"[33] नेहरू प्रकार की असंलग्नता पाकिस्तान श्रीलंका और बर्मा को पसंद नहीं थी जबकि कोटलेवाला छाप तटस्थता भारत और इंडोनेशिया को पसंद नहीं थी ।

बोगर सम्मेलन (दिसम्बर 1954)

यह सम्मेलन कोलम्बो द्वारा इंडोनेशिया में 28 और 29 दिसम्बर 1954 को आयोजित किया गया। इसमें एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रों के मध्य सहयोग एंव सदभाव के विकास तथा पडौसी एंव मित्रवत सम्बन्धों की स्थापना हेतु विचार विमर्श किया गया।[34]

बांडुग सम्मेलन (अप्रेल 1955)

इस सम्मेलन में एशिया एंव अफ्रीका के 29 राष्ट्रों ने भाग लिया। इसमें श्रीलंका ने आर्थिक सहयोग एंव सह अस्तित्व पूर्ण वातावरण के विकास की आवश्यकता प्रकट की।[35] इस सम्मेलन में भी साम्यवाद को लेकर नेहरू कोटलेवाला विरोध बना रहा।

इसके बाद कोटलेवाला ने पश्चिमी एंव अमेरिकी झुकाव वाले "सीटो" संगठन की सदस्यता के प्रति उत्सुकता प्रकट करते हुये कहा कि-साम्यवाद के विरूद्ध यह एक अच्छा प्रयास है, वह दिल से इसके साथ हैं तथा इसमें शामिल होने के विषय पर खुले दिमाग से काम लेंगे। अगर हमें यह लाभप्रद लगा तो हम इसमें शामिल हो जायेंगे।[36] लेकिन इसका अन्य विपक्षी पार्टियों द्वारा जबदस्त विरोध किये जाने के कारण कोटलेवाला यह कदम नहीं उठा सके। जबकि पाकिस्तान इसका सदस्य बन चुका था और भारत इसका विरोध कर रहा था।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि श्रीलंका आरंभ से ही सुरक्षा, भारतीय डर एंव आर्थिक लाभ हेतु क्षेत्रीय संगठनों की तलाश कर रहा था, तथा उसकी क्षेत्रीय संगठन की स्थापना की प्रकृति के बारे में स्पष्ट सोच पश्चिमी झुकाव

वाले संगठन के रूप में बनी हुयी थी । इसीलिये श्रीलंका बाद में भी "एशियान" की सदस्यता हासिल करने के लिए काफी उत्सुक रहा है ।

श्रीलंका क्षेत्र में शक्ति संतुलन, भारतीय प्रभाव पर रोक एवं आर्थिक विकास हेतु किसी भी क्षेत्रीय संगठन के गठन के प्रति उत्सुक था । यही कारण था, जबकि 1980 में राष्ट्रपति जियाउर्रहमान द्वारा भारत एवं रूस विरोधी तथा समानता पर आधारित दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय संगठन का प्रस्ताव रखा तो सर्वप्रथम श्रीलंका ने बंगलादेश का जबरदस्त समर्थन किया[37] इसका एक कारण यह भी हो सकता था कि इस संगठन के माध्यम से वह अपने द्विपक्षीय विवादों को सुलझाने में समर्थ पाने की उम्मीद लगाये बैठा था । अन्य पड़ौसी राष्ट्रों की भाँति श्रीलंका की भी यह सोच थी कि इससे छोटे-छोटे राष्ट्र गुटबद्ध होकर अपने हितों की पूर्ति कर सकेंगे । इसी उतावलेपन के कारण श्रीलंका ने सातों राष्ट्रों के सातों राष्ट्रों के विदेश सचिवों की प्रथम मीटिंग का आयोजन 21 से 23 अप्रेल 1981 को कोलम्बों में आयोजित किया । इस बैठक के उद्घाटन भाषण में श्रीलंका के विदेश मंत्री ए. सी. एस. हमीद ने कहा कि-"हम आपस में काफी समानता रखते हैं । भौगोलिक रूप में हमारा क्षेत्र स्पष्ट रूप से परिभाषित है । ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक रूप से हम समान विरासते रखते हैं । विश्व के सभी बड़े धर्मों के अनुयायी यहां सहिष्णुतापूर्वक रहते हैं । सभी राष्ट्रों की विदेश नीति का आधार असंलग्नता है । हमारी कला, साहित्य संगीत समान हैं तथा हम विकास की समान आवश्यकता महसूस करते हैं । श्रीलंका की सरकार संयुक्त क्षेत्रीय दृष्टिकोण के आदर्श का सुदृढ़ रूप से समर्थन करती है । इस प्रकार के सहयोग का लक्ष्य सामूहिक आत्मनिर्भरता का विकास होगा ।

क्षेत्रीय सहयोग को संगठनात्मक रूप प्रदान करने के लिये सभी विदेश सचिवों को रचनात्मक दृष्टिकोण अपना चाहिये । अंतर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप के बिना क्षेत्र के अंदर ही विवादों एंव असमानताओं को सुलझाने की कोशिशें की जानी चाहिये ।[38]

लेकिन इस बैठक में पाकिस्तान एंव भारत के सावधानी पूर्ण एंव सचेत दृष्टिकोण के कारण श्रीलंका का उत्साह जल्दी ही ठण्डा पड़ गया । द्विपक्षीय एंव विरोधी मुद्दे इसकी कार्यवाही से बाहर रखे जाने के उपबंध के कारण श्रीलंका का रहा-सहा जोश भी जाता रहा क्योंकि सार्क के माध्यम से श्रीलंका की जातीय समस्या को सुलझाने का उसका सपना टूट गया । व्यापारिक क्षेत्र में भी इस बैठक में सहमति नहीं हुयी थी ।

यही कारण था कि सार्क के माध्यम से अपने हितों की पूर्ति न होते देखकर श्रीलंका ने सर्वप्रथम इस बैठक के तुरंत बाद 29 मई 1981 को "एशियान" की सदस्यता के लिये औपचारिक आवेदन पत्र प्रधान मंत्री प्रेमदासा ने "एशियान" के चार सदस्य राष्ट्रों (इंडोनेशिया, फिलीपीन्स, थाईलैण्ड और मलेशिया) की यात्रा के दौरान प्रेषित कर दिया ।[39] श्रीलंका द्वारा सार्क संगठन की संभावना की प्रथम शुरूआत के समय ही उठाया गया यह कदम सार्क भावना के विरुद्ध था । इससे सदस्य राष्ट्रों में आपसी विश्वास को मजबूत बनाये जाने की कार्यवाहियों में बाधा पैदा होने की काफी संभावनायें थी ।

इसके बाद आयोजित अन्य बैठकों में श्रीलंका का व्यवहार औपचारिक बना रहा । "सार्क" की प्रथम विदेशमंत्री स्तर की बैठक में श्रीलंका का रूखा व्यवहार स्पष्ट रूप से देखने को मिला तथा श्रीलंका के विदेश मंत्री इस बैठक की औपचारिक समाप्ति से पूर्व ही स्वदेश लौट गये ।[40]

इसका एक कारण यह हो सकता है कि नई दिल्ली बैठक का आयोजन श्रीलंका में 23 जुलाई 1983 के जातीय दंगो के तत्काल बाद । और 2 अगस्त 1983 को किया गया था । इसका एक कारण यह भी हो सकता था कि इस बैठक में सर्वप्रथम सार्क के लक्ष्य एंव सिद्धान्त स्वीकृत किये गये तथा सार्क को आर्थिक एंव सांस्कृतिक सहयोग तक ही सीमित कर दिया गया था । द्विपक्षीय एंव विवादग्रस्त मुद्दे इसकी कार्यवाही से बाहर रखे गये । इस प्रकार श्रीलंका को लगा कि उसके हितों एंव आकांक्षाओं की पूर्ति सार्क संगठन के माध्यम से संभव नहीं लगती । यह मात्र एक औपचारिक संगठन के रूप में उभरकर आया, जबकि श्रीलंका इसे "एशियान" जैसा रूप प्रदान किये जाने की आशा रखता था ।[41] श्रीलंका की आशा सुरक्षा के दृष्टिकोण से भी क्षीण हो गयी, इसके माध्यम से वह असुरक्षा के भाव को मिटाने में असमर्थ पा रहा था क्योंकि इस सम्बन्ध में सार्क में कोई व्यवस्था नहीं अपनायी गयी थी ।

7 और 8 जुलाई 1984 को मालदीव की राजधानी माले में आयोजित स्टैंडिग कमेटी की द्वितीय बैठक में श्रीलंका के व्यवहार में गुणात्मक परिवर्तन आया । बंगलादेश द्वारा सार्क को संस्थात्मक रूप प्रदान करने एंव मंत्रिपरिषद के गठन के प्रस्ताव का श्रीलंका ने अकेले विरोध किया ।[42] श्रीलंका के विदेश सचिव डब्ल्यू. टी. जयसिंघे के कहा कि "हम विश्वास करते है कि सार्क रूपी महल को ठोस आधार प्रदान करने के लिये सम्पूर्ण प्रयत्नों की आवश्यकता है । यदि इसकी रचना हम असुरक्षा के आधार पर करते हैं तो यह कभी टूट सकता है । हमारा मानना है कि जब तक सार्क को अच्छी तरह एंव सही मापने में स्थापित नहीं कर लिया जाता तब तक सार्क का अन्य क्षेत्रों

में विस्तार या और अधिक संस्थात्मक रूप प्रदान करना, भविष्य में अनुपयोगी ही रहेगा ।[42]

यही विरोध विदेशमंत्री स्तर की द्वितीय बैठक (माले 10-11 जुलाई 1984) तथा स्टैंडिंग कमेटी की तीसरी बैठक (5 से 7 फरवरी 1985) के दौरान बना रहा । इस तीसरी बैठक में श्रीलंका एंव अन्य राष्ट्रों म के मध्य मंत्रिपरिषद के गठन पर सीधा विरोध उभरकर आया । श्रीलंका का मानना था कि "सर्वप्रथम आपसी साझीदारी एंव विश्वास तथा राजनैतिक इच्छा पैदा करना आवश्यक है तभी संस्थात्मक ढाचे का विकास उचित होगा ।[43]

श्रीलंका के विदेश सचिव डब्ल्यू. टी. जयसिंघे ने इस बैठक को सम्बोधित करते हुये स्पष्ट रूप से कहा था कि "इस समय हम संदेहग्रस्त हैं इसलिये सार्क के विस्तार का यह उचित समय नहीं है । चाहे वह सार्क मंत्रिपरिषद की रचना हो या अन्य किसी संस्थात्मक ढाचे की स्थापना हो । यह तभी उचित होगा जब हम आपसी समझ एंव मतैक्य स्थापित करलें । सार्क अभी अपरिपक्व अवस्था में है ।"[44]

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि श्रीलंका जो सार्क के गठन के समय सर्वाधिक उत्साहित राष्ट्र था, इस समय उसको संस्थात्मक रूप प्रदान किये जाने का सर्वाधिक विरोधी बन गया । यह गुणात्मक परिवर्तन हालांकि अटपटा लग सकता है लेकिन इसे आश्चर्यजनक नहीं माना जा सकता क्योंकि इस दौरान श्रीलंका की जातीय समस्या को लेकर भारत और श्रीलंका के मध्य तनाव में काफी बड़े पैमाने पर वृद्धि हो चुकी थी । श्रीलंका का मानना था कि भारत आतंकवाद के विरोध में दोहरी नीति अपना रहा है । एक तरफ स्वंय तो सिक्ख आतंकवादियों के विरोध में स्वर्णमंदिर में सैनिक कार्यवाही को (आपरेशन

ब्ल्यूस्टार। उचित मानता है तथा दूसरी तरफ श्रीलंका को राजनैतिक समाधान खोजने के लिये दबाव डाल रहा है ।[45] राष्ट्रपति जयवर्धने ने अप्रैल 1986 में कहा था कि "जब तक आतंकवादी समर्पण नहीं कर देते, मैं राजनीतिक समाधान नहीं कर सकता ।

श्रीलंका की जातीय समस्या का सर्वाधिक गलत प्रभाव सार्क राष्ट्रों के विदेशमंत्रियों की तीसरी बैठक पर पड़ा, जो 13 और 14 मई 1985 को भूटान की राजधानी थिम्पू में आयोजित की गयी । श्रीलंका ने इस बैठक के बहिष्कार की घोषणा की, जिससे सार्क के समक्ष सर्वप्रथम एक महत्वपूर्ण संकट उत्पन्न हुआ । 10 मई 1985 को श्रीलंका के विदेशमंत्री ए.सी.एस. हमीद ने घोषणा की कि "श्रीलंका 13 मई से होने वाली थिम्पू बैठक में भाग नहीं लेगा ।[47] श्रीलंका के इस निर्णय ने सार्क के सभी सदस्य राष्ट्रों को चौंका दिया । श्रीलंका ने यह निर्णय 11 अप्रैल 1985 को भारत के विदेश राज्य मंत्री खुर्शीद आलम खान द्वारा राज्य सभा में दिये गये वक्तव्य के विरोध में लिया, जिसमें कहा गया था कि "श्रीलंका में स्थिति शोचनीय, पाशविक, क्रूर एवं अमानवीय बनी हुयी है ।"[48]

श्रीलंका की सरकार ने इस वक्तव्य का काफी बड़े पैमाने पर विरोध किया तथा भारत से क्षमायाचना की माँग की । श्रीलंका के विदेश मंत्री ए.सी.एस. हमीद ने कहा था कि "इस वक्तव्य में सम्मान एवं शिष्टाचार नाममात्र को भी नहीं था ।[49] इसके साथ ही साथ यह भी स्पष्ट कर दिया था कि- "हम सार्क से जुड़े रहे है, हम सार्क का एक भाग है तथा आगे भी सार्क से जुड़े रहेंगे । हम साथ-साथ तैरने एवं डूबने का भाव रखते हैं । लेकिन वर्तमान स्थिति में बैठक में भाग लेना असंभव है ।[50]

सार्क के समक्ष उत्पन्न इस संकट को तभी टाला जा सका, जबकि भारतीय प्रधानमंत्री राजीवगांधी पाकिस्तान के राष्ट्रपति जियाउल हक, बंगलादेश के राष्ट्रपति एच. एम. इरशाद एंव मेजबान राष्ट्र भूटान के नरेश जिंग्मे सिंग्वे वांगचुक ने राष्ट्रपति जयवर्धने से सीधा सम्पर्क स्थापित करके ऐसा कदम न उठाये जाने का अनुरोध किया जिसे मानकर श्रीलंका द्वारा 13 मई को विदेश सलाहकार एसमंड विक्रमसिंघे तथा भारत स्थित श्रीलंका के राजदूत बनार्डि तिलकरत्ने को बैठक में भाग लेने भेज दिया गया ।[51]

श्रीलंका के इस कदम से यह स्पष्ट है कि श्रीलंका सार्क भावना की गंभीरता को न समझते हुये अपने द्विपक्षीय एंव आंतरिक मामलों की छाया सार्क पर डालकर अन्य राष्ट्रों को प्रोत्साहित किये जाने का उदाहरण बनने की कोशिश कर रहा था, जिससे वह सार्क उपबंधों में इस तरह की फेर-बदल कराये जाने में समर्थ हो सके । श्रीलंका यह जानता था कि सार्क मंच पर द्विपक्षीय एंव विवादग्रस्त मुद्दे नहीं उठाये जा सकते, इसलिये इसका बहिष्कार करके अन्य राष्ट्रों का ध्यान श्रीलंका की जातीय समस्या की तरफ खींचा जा सकता है तथा इससे भारत पर दबाब डाला जा सकता है ।

श्रीलंका का यह कदम हालांकि उसके तात्कालिक क्षणिक लाभ की कोशिश माना जा सकता है लेकिन इसका भविष्य में सार्क संगठन पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसको अनदेखा करके एक गलत उदाहरण पेश किया है ।

इस बैठक में भी श्रीलंका ने मंत्रिपरिषद के गठन एंव सार्क को दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन के रूप में परिवर्तित किये जाने पर असहमति व्यक्त करते हुये कहा कि "इसके लिये अभी और अधिक विचार विमर्श की आवश्यकता है ।"[52]

श्रीलंका के सार्क के सम्बन्ध में इस परिवर्तित दृष्टिकोण का एक कारण राजनीतिक अस्थिरता, जातीय समस्या या आतंकवाद तथा तमिल समस्या के सम्बन्ध में भारत की भूमिका को माना जा सकता है जैसा कि श्रीलंका के विदेशमंत्री ए.सी.एस. हमीद ने प्रथम ढाका शिखर सम्मेलन से पूर्व आयोजित विदेश मंत्रियों की चौथी बैठक के दौरान 5 दिसम्बर 1985 को कहा था कि- "सार्क संगठन का एक लक्ष्य क्षेत्रीय राजनीतिक स्थायित्व होना चाहिये। श्रीलंका के समक्ष राजनीतिक स्थायित्व के मार्ग में सबसे बड़ा खतरा आतंकवाद है। क्षेत्र की सरकारों को सीमा के आर-पार आतंकवाद की समस्या की तरफ ध्यान देना चाहिये। श्रीलंका सार्क राष्ट्रों में एक ऐसा राष्ट्र है जो सीमा के बाहर से संचालित आतंकवाद से ग्रसित है। आतंकवादी दक्षिणी भारत में शरण लिये हुये है। चूंकि श्रीलंका व्यक्तिगत रूप से इस समस्या से ग्रसित है, इसलिये इस समस्या का समाधान शिखर सम्मेलन में क्षेत्रीय सहयोग के माध्यम से खोजा जाना चाहिये। क्षेत्रीय राजनैतिक स्थायित्व के बाद ही सही मायने में हम आर्थिक सहयोग की तरफ कदम बढ़ा सकते है। अंतर्राष्ट्रीय समाज अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद एंव नशीले पदार्थों के दुरूपयोग की चुनौतियों से घिरा हुआ है।"[53]

इस बैठक में श्रीलंका ने जातीय समस्या को आतंकवाद की आड़ में क्षेत्रीय सहयोग द्वारा सुलझाने की तरफ कदम बढ़ाया। इसी आशय का वक्तव्य 7 और 8 दिसम्बर 1985 को आयोजित प्रथम सार्क शिखर सम्मेलन में श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने ने देते हुये कहा था कि -"हर दृष्टि से भारत एक विशाल राष्ट्र है, वही पड़ौसी राष्ट्रो के मध्य विश्वास पैदा करके मुख्य भूमिका निभा सकता है। क्षेत्रीय सुदृढ़ता के मार्ग में ऐतिहासिक भौगोलिक और राजनैतिक कारण बाधा पैदा करते रहे है। संघर्षपूर्ण ऐतिहासिक विरासते, स्त्रोत एंव आकार में बड़े पैमाने पर असमानता, विभिन्न स्तरों पर विकास तथा सामरिक

दृष्टिकोण में विभिन्नता यहां देखी जा सकती है । यही कारण है कि दक्षिण एशिया में धीमीगति से क्षेत्रीय सहयोग की तरफ कदम बढ़ाये गये हैं । आपसी विश्वास एंव सहयोग के बिना क्षेत्रीय सहयोग को सफल नहीं बनाया जा सकता । मानवीय विकास और राजनीतिक स्थिरता को क्षेत्रीय सहयोग में प्राथमिकता दी जानी चाहिये । हमारे सभी राष्ट्रों को राजनैतिक स्थायित्व की आवश्यकता है, आतंकवादी आंदोलन यहां अस्थिरता पैदा कर रहे हैं । सदस्य राष्ट्रों की सरकारें एंव अध्यक्ष जातीय एंव अल्पसंख्यक पृथकतावाद के दबाब में कार्य कर रहे हैं ।"[54]

राष्ट्रपति जयवर्धने ने लाभदायक क्षेत्रीय सहयोग की आवश्यकता प्रकट करते हुये आशा व्यक्त की कि "हमने सार्क रूपी जहाज को आज विश्व सागर में यात्रा के लिये चला दिया है, जो भूख, गरीबी, बेरोजगारी एंव कुपोषण जैसे बंदरगाहों में प्रवेश करके इन बीमारियों को दूर करने की कोशिश करेगा । मानवीय कल्याण की चमक-दमक के लिये सार्क चल चुका है । आशा है इसके ऊपर कोई विद्रोह नहीं होगा ।"[55]

राष्ट्रपति जयवर्धने ने सार्क के राष्ट्रो के मध्य संचार एंव माध्यम के रूप में अंग्रेजी भाषा के विकास को स्पष्ट करते हुये कहा कि "दक्षिण एशिया के सभी राष्ट्र अंग्रेजी बोलते हैं, इसलिये इसका विकास किया जाना चाहिये ।"[56]

12 और 13 अगस्त 1986 को ढ़ाका में आयोजित सार्क मंत्रिपरिषद की प्रथम बैठक के दौरान आतंकवाद के मुद्दे पर भारत और श्रीलंका के मध्य गंभीर मतभेद देखने को मिले । इस बैठक में श्रीलंका के विदेश मंत्री ए.सी.एस.हमीद क ने कहा कि - "आतंकवाद विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट उनके राष्ट्र के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है ।"[57]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीलंका का दृष्टिकोण सार्क के सम्बन्ध में आतंरिक राजनीति (तमिल समस्या) क्षेत्रीय स्तर पर भारतीय भय एंव क्षितिजीय स्तर पर जयवर्धने काल में अमेरिकी झुकाव से प्रभावित रहा है । जातीय समस्या के कारण श्रीलंका को भारत से यह डर बना रहा है कि भारत कभी भी तमिलों की रक्षा हेतु युद्ध छेड़ सकता है, यही कारण है कि वह अपनी सुरक्षा के लिये अमेरिकी एंव पश्चिमी राष्ट्रों की सहायता के लिये दौड़ धूप करता रहा है । श्रीलंका का सुरक्षा दृष्टिकोण भारत से पृथक उसका विरोधी बना हुआ है । जैसा कि श्रीलंका में यह भाव पैदा हुआ है कि "भारत श्रीलंका का नम्बर एक शत्रु है, हम भारतीय डर के कारण ही महाशक्तियों से सैनिक मदद प्राप्त कर रहे हैं । जबसे भारत ने रूस से मित्रता स्थापित की है, हम इसके विरोध में अमेरिकी मदद की तरफ आकर्षित हुये है तथा अमेरिका के साथ सैनिक समझौता कर सकते हैं । हमें अब संलग्नता को भूलकर अमेरिकी छाते के अधीन सुरक्षा प्राप्त कर लेनी चाहिये ।[58] इसी भारतीय डर एंव जातीय समस्या से देश की अखण्डता के समक्ष उत्पन्न संकट को स्पष्ट करते हुये राष्ट्रपति जयवर्धने ने कहा था कि "अगर श्रीलंका को मदद प्रदान नहीं की गयी तो श्रीलंका साइप्रस की तरह विभक्त हो जायेगा ।"[59] भारत श्रीलंका में उथल-पुथल की कोशिश कर रहा है । एल. टी. टी. ई. का मुख्यालय मद्रास में स्थित है तथा तमिल आतंकवादियों को मद्रास से मदद प्राप्त होती है ।[60]

उपरोक्त विवरण से यह साफ स्पष्ट है कि जब तक श्रीलंका की जातीय समस्या का हल नहीं खोज लिया जाता, श्रीलंका के सुरक्षा दृष्टिकोण एंव नीतियों में सद्भाव पैदा नहीं होता, जब तक सार्क संगठन में उसकी भूमिका इसी तरह प्रभावित होती रहेगी । भारत द्वारा भी आपसी समझ

एंव विश्वास पैदा करने की पूरी कोशिश करके पड़ौसी राष्ट्रों में व्याप्त भय को कम करने के सत्प्रयत्न किये जाने चाहिये । महाशक्तियों को क्षेत्र में अनावश्यक तनाव को प्रोत्साहन देने की नीति त्यागकर क्षेत्र को मुक्त छोड़ देना चाहिये ।

श्रीलंका में नीति निर्माण में व्यक्तिगत प्रभाव भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है । जैसा कि स्पष्ट है कि यूनाइटेड नेशनल पार्टी ।जो कि सत्तारूढ है। एंव भारत में इंदिरा कांग्रेस की नीतियों में आधारभूत अंतर है, जिसके कारण भी यह भाव पैदा हुआ है । इस प्रकार सत्ता परिवर्तन के बाद भी दोनों राष्ट्रों के सम्बन्धों में परिवर्तन आ सकता है , जिसका प्रभाव सार्क संगठन की तरफ सकारात्मक मोड़ ले सकता है । हालांकि 1989 तक ऐसी कोई संभावना नजर नहीं आती, क्योंकि यू. एन. पी. का शासन काल तब तक शेष है । भारत में राजीव सरकार का कार्यकाल भी 1990 तक है ।

यू. एन. पी. की पड़ौसी नीति को स्पष्ट करते हुये अनुरा भंडारनायके ने कहा है कि "वह पड़ौसी राष्ट्रो के साथ आँख मिचौली के सम्बन्ध बनाये हुये है ।[61] इस प्रकार यू. एन. पी. की किसी स्पष्ट नीति के अभाव के कारण भी सम्बन्धों में अस्थिरता पैदा हुयी है, जिसका सीधा असर सार्क संगठन के ऊपर देखा जा सकता है ।

हालांकि सार्क एक आर्थिक एंव सांस्कृतिक संगठन है लेकिन राजनीतिक स्थायित्व एंव सहयोग के अभाव में आर्थिक सहयोग कोई अर्थ नहीं रखता ।[62] राजनैतिक सहयोग के अभाव में आर्थिक सहयोग सफल हो ही नहीं सकता । श्रीलंका की कार्यवाही इसका प्रत्यक्ष उदाहरण मानी जा सकती है ।

अंत में यही कहा जा सकता है कि सार्क के सम्बन्ध में श्रीलंका का दृष्टिकोण अन्य पड़ौसी राष्ट्रों की भाँति पश्चिमी झुकाव का रहा है। उसे भी भारतीय प्रभुत्व का डर बना हुआ है, इसी कारण श्रीलंका बार-बार तात्कालिक परिस्थितियों में सार्क के विस्तार को निरर्थक मानता रहा है तथा राजनैतिक स्थायित्व एंव सहयोग की आवश्यकता प्रगट करता रहा है, जिससे सही मायने में समानता के आधार पर सम्बन्ध स्थापित किये जा सके।

निम्न क्षेत्रों में क्षेत्रीय सहयोग स्थापित करके श्रीलंका अधिक लाभ प्राप्त कर सकता है :-

चाय - श्रीलंका का हित इसी में है कि चाय की कीमतों में स्थिरता बनी रहे, क्योंकि वह चाय का मुख्य निर्यातक देश है, तथा श्रीलंका को 40 प्रतिशत विदेशी मुद्रा चाय निर्यात से ही प्राप्त होती है। चाय निर्यात के क्षेत्र में भारत और बंगलादेश से उसकी प्रतिस्पर्धा विश्व बाजार में है। इसलिये चाय के क्षेत्र में संयुक्त बाजार व्यवस्था अपनाकर लाभप्रद स्थिति प्राप्त की जा सकती है।[63]

रबर एंव नारियल - श्रीलंका चाय के बाद मुख्य रूप से रबर एंव नारियल का निर्यात करता है। 90 प्रतिशत प्राकृतिक रबर का निर्यात -मलेशिया, इंडोनेशिया, थाइलैण्ड और श्रीलंका से होता है। इस कारण भी श्रीलंका "एशियान" राष्ट्रों के साथ सम्बन्ध बढ़ाने का उत्सुक रहा है क्योंकि ये राष्ट्र व्यापारिक क्षेत्र में उसके प्रतिद्वन्द्वी है।

श्रीलंका निर्मित वस्त्र, औद्योगिक उत्पादन एंव टूरिज्म आदि के क्षेत्र में भी सयुंक्त क्षेत्रीय व्यवस्था अपनाकर लाभ कमा सकता है ।

शिपिंग - आयात-निर्यात व्यवस्था में जहाजों द्वारा माल की ढुलाई तथा भाड़े का अत्यन्त प्रभाव पड़ता है । भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका और बंगलादेश इस क्षेत्र में सहयोग स्थापित कर सकते है । श्रीलंका भेदभावपूर्ण भाड़े व्यवस्था के बारे में पहले से ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आवाज उठाता रहा है ।

व्यापार एंव निवेश - श्रीलंका व्यापार एंव निवेश के क्षेत्र में भी सयुंक्त व्यवस्था के माध्यम से लाभ कमा सकता है । श्रीलंका में विभिन्न राष्ट्रों के पूंजी निवेश एंव आर्थिक सहयोग की काफी संभावनायें है । अब श्रीलंका में पूंजी निवेश निम्न क्षेत्रों में लाभप्रद हो सकता है - सीमेंट उद्योग, चाय की पेटियां बनाने के कारखाने, विद्युत खंभे तथा विद्युत वस्तुओं का उत्पादन , चीनी प्लांट, पेपर प्लांट, प्लास्टिक उद्योग, चावल मिल, साईकिल उद्योग, वस्त्र उद्योग, कृषि एंव यन्त्र निर्माण , नायलोन एंव रबर की वस्तुओं का निर्माण, रेल के डिब्बे आदि का निर्माण ।

श्रीलंका रेल के डिब्बे रूमानिया से आयात करता है, जबकि भारत में मद्रास में निर्मित डिब्बों की किस्म उत्तम होने के साथ-साथ स्थान भी अत्यन्त नजदीक है, जिसके कारण दर भी सस्ती हो सकती है । इस प्रकार श्रीलंका सद्भावपूर्ण व्यवहार द्वारा आर्थिक क्षेत्र में क्षेत्रीय सहयोग के माध्यम से काफी लाभ कमा सकता है ।

CHAPTER - IV

1. W.H.Wriggins- Ceylon Dilemmas of a new nation (America) 1968 p.11.

2. Ibid.

3. A.J.Wilson Politics in Sri Lanka 1947-79 (London) 1979 p.1.

4. A.G.Noorani- "Constitutional Framework for Sinhala-Tamil accord" in Regional Cooperation and Development in South Asia Vol.2 Bhabani Sen Gupta Ed.(New Delhi) 1986 p.58.

5. Committee for Rational Development- Sri Lanka the Ethnic conflict (New Delhi) 1984 p.62.

6. Atiur Rahman- Political Economy of SARC (New Delhi) 1986 p.17.

7. Vijaya Samaraweera "Foreign Policy" in Sri Lanka A Survey K.M.De Silva Ed.(London) 1977 pp. 334-35.

8. James Jupp Sri Lanka- Third World Democracy (London) 1978 p. 320.

9. S.U.Kodikara- Foreign Policy of Sri Lanka- A Third World Perspective (New Delhi) 1982 p.

10. Weekend (Colombo) 26 June 1986.

11. S.U.Kodikara Foreign Policy of Sri Lanka- A Third World Perspective (New Delhi) 1982 p.

12. The Island (Colombo) October 9, 1983.

13. The Island, December 27, 1984.

14. S.U.Kodikara- "Regional Roles and behaviour in South Asia" in Regional Cooperation and Development in South Asia Vol.1 Bhabani Sen Gupta Ed.(New Delhi) 1986 pp.46-47.

15. Asian Recorder Vol. XXXI No.30 July 23-29, 1985 pp.18425-26

16. India Today (New Delhi) Vol.X No.14 July 16-31,1985 pp. 97-98.

17. The Hindu(Madras) 28 March 1985.

18. Times of India- 16 June 1986.

19. S.U.Kodikara "Regional Roles and behaviour in South Asia" Regional Cooperation and Development in South Asia Vol. 1 Bhabani Sen Gupta Ed.(New Delhi) 1986 p.46.

20. Ibid.

21. Ibid- p.49.

22. Times of India- 15 June 1984.

23. The Hindu- 26 August 1984.

24. The Island 31 March 1985.

25. S.U.Kodikara- Foreign Policy of Sri Lanka, A Third World Perspective (New Delhi) 1982 p.

26. Sun 11 Dec.1985.

27. Rita Manchanda- "Sri Lanka Crisis: Conflict and Intervention" Strategic Analysis (New Delhi) Vol.X No.5 Aug.1986 p.571.

28. S.U.Kodikara- Foreign Policy of Sri Lanka- A Third World Perspective (New Delhi) 1982 p.

29. Asian Recorder Vol. XXVIII No.32, Aug.6-12,1982 p.16737.

30. Keesings Contemporary Archives (London) Vol.XXVIII No.8 August 6, 1982 p. 31631.

31. S.W.R.D.Bandaranaike Towards a new era (Colombo) 1961 p.812.

32. S.U.Kodikara- Foreign Policy of Sri Lanka- A Third World Perspective (New Delhi) 1982 p.

33. Ibid. pp.166-68.

34. Ibid. p.173.

35. Ibid. p. 175-76.

36. Ibid p.

37. S.P.Amarasingnam - "Whither South Asia?" Ed.Tribune Vol.25, No.40 May 2,1981 pp.2-4.

38. Ibid.

39. S.U.Kodikara-Foreign Policy of Sri Lanka-A Third World Perspective (New Delhi) 1982 p.189.

40. Pratap Kapur- "SARC : Whither Regional Cooperation" Democratic World Vol.XII No.35 Aug.28,1983 pp.6-7,17.

41. S.D.Muni- "Strategic Aspects of SARC" Strategic Analysis Vol.IX No.1 April 1984 pp.23-24.

42. Ministry of Foreign Affairs- SARC: Meeting of Foreign Ministers(Male)1984 p.50.

43. 'Notes and Comments'- India Quarterly Vol.XL Nos. 3 & 4 July-Dec.84 pp.387-91.

44. Ibid.

45. K.Manoharan "Sri Lankan Turmoil" in Food Security in South Asia B.M.Bhatiya Ed.(New Delhi)1985 p.36.

46. Times of India 27 April 1986.

47. Sun May 11, 1985.

48. Sun May 9, 1985.

49. Ibid May 11, 1985.

50. Ibid.

51. Sun May 13, 1985.

52. Times of India May 15, 1985.

53. Sun December 7, 1985.

54. Weekend (Colombo) 8 Dec.1985.

55. Sun 9 Dec.1985.

56. Pot (Bangladesh Series) Vol.X No.243 Dec.10,1985 p.1991.

57. Ibid Vol.XI No.153 Aug.14,1986 p.1565.

58. Committee for rational Development- Sri Lanka the Ethnic Conflict (New Delhi) 1984 p.61.

59. Times of India May 12, 1986.

60. Ibid. June 16, 1986.

61. Times of India June 15, 1984.

62. Atiur Rahman- Political Economy of SARC (New Delhi) 1986 pp. 10-11.

63. S.U.Kodikara- "South Asian Regional Cooperation: A Sri Lankan Perspective" in South Asian Regional Cooperation K.Satyamurty Ed.(Hyderabad) 1982 p.220.

पांचवाँ अध्याय

सार्क का भविष्य एवं निष्कर्ष

पिछले अध्यायों में सार्क के ऐतिहासिक एवं तत्कालीन स्वरूप एवं कार्यवाहियों का अध्ययन किया गया है, जिसके आधार पर हम सार्क के भविष्य के बारे में कुछ निष्कर्ष निकालने की कोशिश इस अध्याय में करेंगे। सार्क का गठन जिस उत्साह एवं जोश से किया गया था, वह इस अल्प अवधि में ही कम क्यों होता चला गया है, तथा आगे इस संगठन के विकास की क्या संभावनायें हो सकती हैं, इस पर संक्षिप्त दृष्टि डालने की कोशिश इस अध्याय में की गयी है।

जैसा कि हमने पिछले अध्यायों में देखा कि सार्क का गठन मेलभाव रहित, आपसी खींचातानी, शंका, द्वेष एवं डर के वातावरण में हुआ, जिसकी काली छाया सार्क की अगली बैठकों पर स्पष्ट दृष्टिगोचर हुयी। श्रीलंका का दृष्टिकोण तो इस सम्बन्ध में अत्यन्त ही विरोधी स्वरूप में मुखरित हुआ है।

हमने यह भी स्पष्ट करने की कोशिश की है कि दक्षिण एशिया की राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थिति तथा बाह्य एवं क्षेत्रीय शक्तियों के आपसी सम्बन्धों का सार्क पर क्या प्रभाव पड़ा है तथा सदस्य राष्ट्रों की आंतरिक राजनीति ने किस तरह सार्क संगठन को प्रभावित करने की कोशिश की है। श्रीलंका की तमिल समस्या इसका एक ज्वलंत उदाहरण मानी जा सकती है।

दक्षिण एशिया में डर, अविश्वास एवं शंकायें इतने बड़े पैमाने पर व्याप्त हैं कि आपसी सहयोग के सम्बन्ध में सदस्य राष्ट्रों का दृष्टिकोण एकदम अलग-थलग बना हुआ है । भारत की केन्द्रीय स्थिति के प्रति छोटे-छोटे पड़ौसी राष्ट्र गुटबद्ध होकर, अपनी स्थिति को समानान्तर बनाने की कोशिश करते रहे हैं । इस समय यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि किसी भी प्रकार का क्षेत्रीय सहयोग "प्रभाव एवं प्रभावी" के सम्बन्धों पर आधारित होकर अधिक दिन तक सफलतापूर्वक आगे नहीं बढ़ाया जा सकता । सार्क भी इससे भविष्य में अप्रभावित नहीं रहेगा ।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना उचित है कि डर और शंकायें यकायक पैदा नहीं हो जाती, इनकी जड़ें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक रूप से अत्यन्त गहरी होती हैं, दक्षिण एशिया के राष्ट्रों की भी यही स्थिति है, जो सार्क भावना को सुदृढ़ रूप से एकबद्ध करने के मार्ग में भविष्य में आगे आड़े आते रहने की संभावना प्रकट करती हैं ।

हमने पिछले अध्यायों में स्पष्ट किया है कि दक्षिण एशिया के राष्ट्र आपस में विभिन्न मुद्दों पर संघर्षरत हैं । भारत और पाकिस्तान के मध्य तीन युद्ध लड़े जा चुके हैं तथा अभी भी यह संभावना समाप्त नहीं हुयी है । दक्षिण एशिया के लोग अभी भी क्षेत्रीय स्वायत्तता एवं प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के लिये संघर्षरत हैं । भुखमरी, गरीबी, कुपोषण तथा बीमारियां यहाँ के समाज में बुरी तरह व्याप्त हैं । यहाँ के लोग उपनिवेशवाद के नकारात्मक अनुभव से ग्रसित हैं । ब्रिटिश उपनिवेश के बाद दक्षिण एशिया में "अभिजन राष्ट्रवाद"[2] का जन्म ही हो सका था, तथा स्वतन्त्रता के बाद इन लोगों ने साधारण जनता को राजनैतिक रूप से सहभागी बनाने की कोशिश की ही नहीं । इसलिये राष्ट्रवाद की लड़ाई अभी भी यहाँ जारी है, जिसका असर सार्क पर भी पड़ने की संभावना है, क्योंकि आतंकवाद एवं राजनैतिक अस्थिरता

के वातावरण में शंका एवं अविश्वास में वृद्धि ही होती है, न कि कमी । शांति और सद्भाव के स्थान पर यहां लोगों के हाथों में बंदूकें थमी हुयी हैं, चाहे वह श्रीलंका की जातीय समस्या हो, भारत में सिक्खों द्वारा खालिस्तानी संघर्ष हो या फिर पाकिस्तान में पख्तूनिश्तान की मांग हो ।

हमने यह भी अध्ययन किया है कि भारतीय प्रभुत्व का डर पाकिस्तान, श्रीलंका और बंगला देश के राजनयिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा सुरक्षा सम्बन्धी निर्णयों को दिशा निर्देश देता रहा है । क्षेत्रीय संतुलन हेतु ये राष्ट्र बाह्य शक्तियों की तरफ ताकते रहे हैं । विशेषकर अमेरिका एवं चीन की तरफ । ये शक्तियां छोटे-छोटे राष्ट्रों को भारत के विरुद्ध उकसाती रही है, जिसके कारण भारत ने रूस का हाथ थामने की कोशिश की है । सार्क के गठन के मूल में भी बाह्य शक्तियों का समर्थन रहा है तथा यहां यह स्पष्ट कर देना अत्यन्त आवश्यक होता है कि बाह्य शक्तियों के समर्थन पर आधारित क्षेत्रीय सहयोग स्वागत योग्य कभी भी नहीं हो सकता, क्योंकि इन शक्तियों का हित "फूट डालो राज करो" की नीति में ही सन्निहित होता है । बाहरी शक्तियों पर सार्क राष्ट्रों की बढ़ती निर्भरता क्षेत्र में संघर्ष पैदा करती रहेगी, जिससे सार्क भी अछूता नहीं रह सकता ।

दक्षिण एशिया के राष्ट्रों की सुरक्षा दृष्टिकोण भी काफी अलग-थलग रहा है । पाकिस्तान, श्रीलंका, बंगलादेश, मालदीव और नेपाल को महाशक्तियों से अधिक भारतीय डर बना हुआ है । उनका मानना है भारत दक्षिण एशिया को "इन्डियन लेक"[3] समझता है । इसी कारण श्रीलंका एवं पाकिस्तान ने हिंदमहासागर में महाशक्तियों को नौसैनिक छूट प्रदान करके भारत की स्थिति को संकटपूर्ण बना दिया है । श्रीलंका जिसने 1971 में हिंदमहासागर को शांति क्षेत्र बनाये जाने का प्रस्ताव रखा, स्वयं अपने इस दृष्टिकोण से हटकर महाशक्तियों के शिकंजे में उलझ गया है । नेपाल को शांति

क्षेत्र बनाये जाने के प्रस्ताव का भारत को छोड़कर अन्य सभी राष्ट्रों ने समर्थन किया है । पाकिस्तान द्वारा "इस्लामिक बम" का निर्माण एवं श्रीलंका की जातीय समस्या के सम्बन्ध में भी इन राष्ट्रों का दृष्टिकोण अलग-थलग बना हुआ है ।

भारत का दृष्टिकोण द्विपक्षीय सम्बन्धों को मजबूत बनाने का रहा है जबकि अन्य सार्क राष्ट्र प्रत्येक समस्या को क्षेत्रीय सहयोग के आधार पर सुलझाने की कोशिश करते रहे हैं, जिसके कारण भारतीय हितों को संकट पैदा हुआ है । इसी लिये भारत ने गंगाजल के बंटवारे के सम्बन्ध में बंगला देश द्वारा नेपाल को सम्मिलित किये जाने के प्रस्ताव का विरोध किया है । भारत के इस दृष्टिकोण को अन्य राष्ट्रों ने भारत का "मुनरो सिद्धान्त"[4] बताकर विरोध प्रकट किया है ।

पाकिस्तान ने भारतीय डर एवं विस्तारवाद की आड़ में काफी लाभप्रद स्थिति = प्राप्त की है । इसी आधार पर वह "सीटो" एवं "सैटो" जैसे संगठनों का सदस्य बना तथा बाह्य शक्तियों से सैनिक एवं आर्थिक मदद प्राप्त करता रहा है । "अवसरवाद"[5] पाकिस्तान की विदेश नीति का मुख्य आधार रहा है, जिसके कारण सार्क संगठन में गुटबंदी पैदा हुयी है । यह इस बात से स्पष्ट है कि श्रीलंका ने जब थिम्पू बैठक का बहिष्कार करने का निर्णय लिया तो पाकिस्तान एवं नेपाल ने भी जब तक क्षमा मांगली ; जब तक कि श्रीलंका बैठक में भाग नहीं ले लेता ।[6] भारत श्रीलंका की जातीय समस्या का हल मध्यस्थता के माध्यम से खोज रहा था, तब राष्ट्रपति जिया उल हक ने श्रीलंका को हर संभव मदद प्रदान किये जाने की घोषणा करके इसे और अधिक उलझाने की कोशिश की । "इस्लामिक बम" का निर्माण एवं अमेरिकी सैनिक सहायता प्राप्त करके भी पाकिस्तान पड़ौसी राष्ट्रों पर अपनी साख जमाने की कोशिश कर रहा है, जिससे आपसी विश्वास के मार्ग में बाधा ही पैदा हुयी है । प्रथम शिखर सम्मेलन

के दौरान डाक टिकिट में कश्मीर के विवादाग्रस्त क्षेत्र को अपना क्षेत्र बताकर[7] पाकिस्तान ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह कभी भी इस संगठन को राजनैतिक उलझनों में फंसाकर नपुंसक बना सकता है ।

लेकिन कुछ विद्वानों का मानना है कि सार्क एक आर्थिक एवं सांस्कृतिक संगठन है, जिसे राजनैतिक एवं द्विपक्षीय विवादों से अछूता रखा जा सकता है । इस प्रकार के उपबंध भी सार्क चार्टर में कर लिये गये हैं । लेकिन क्या यह सोच एवं मान्यता उचित है । मेरा यह मानना है कि आर्थिक सहयोग तब तक कोई अर्थ नहीं रखता जब तक कि आपसी सुरक्षा से सम्बन्धित भ्रमों को न मिटा दिया जाय, सामरिक हित सामान्य न हो जायें तथा राजनैतिक सहयोग स्थापित न कर लिया जाये ।

यद्यपि सार्क को आर्थिक एवं सांस्कृति स्प प्रदान करके इसे राजनैतिक संघर्ष से बचाने का प्रयत्न कर लिया गया है, लेकिन दक्षिण एशिया में प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था एवं भारतीय प्रभुत्व की आशंका के कारण आर्थिक सहयोग की संभावनायें भी काफी कम है । आपसी व्यापार के क्षेत्र पर इसी कारण सहमति अभी तक नहीं हो पायी है । वित्तीय अभाव के कारण दक्षिण एशिया के गरीबतम राष्ट्र औद्योगिक विकास करने में असमर्थ हैं । इसके लिये उन्हें बाह्य शक्तियों पर निर्भर रहना पड़ता है । सहायता प्रदान करने वाली शक्तियाँ उन वस्तुओं का निर्माण करने के लिये मुश्किल से ही आर्थिक एवं तकनीकी सहयोग प्रदान करेंगी, जिनका कि सार्क राष्ट्र आयात करते हैं क्योंकि इससे उनका बाजार समाप्त हो जायेगा । दूसरी तरफ अगर उनसे नियांतित वस्तुओं के निर्माण हेतु मदद प्राप्त हो जाती है तब भी विश्व बाजार में उनकी प्रतिस्पर्धा विकसित राष्ट्रों से ही होगी । इस प्रकार आर्थिक सहयोग भी संयुक्त जोखिम द्वारा अल्प मात्रा में ही स्थापित किया जा सकता है । इस पर भी

दक्षिण एशिया में भारत की स्थिति प्रभुत्वशाली बनी हुयी है ।

एक दृष्टि में क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग संगठन "दक्षिण-दक्षिण के सहयोग" द्वारा लाभप्रद स्थिति प्राप्त कर सकते हैं । लेकिन दक्षिण के ये राष्ट्र अभी तक लक्ष्यों पर ही सहमत नहीं हो सके हैं । हितों की विभिन्नता एवं उत्तर के विकसित राष्ट्रों के सहयोग के अभाव के कारण इस तरफ कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाया जा सका है । यद्यपि "उत्तर-दक्षिण वार्ता" एवं "दक्षिण-दक्षिण सहयोग" पर विचार विमर्श चल रहा है, लेकिन इन राष्ट्रों में व्याप्त बड़े पैमाने पर असमानता कोई ठोस कदम उठाये जाने के मार्ग में बाधा पैदा करती रही है । स्व0प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने इसी आशय को स्पष्ट करते हुये केनकुन शिखर सम्मेलन में कहा था कि "बिना समानता के मित्रता कोई अर्थ नहीं रखती । इस प्रकार की मनोदशा पूरे विश्व में व्याप्त है । चाहे वह अफ्रीका हो, एशिया हो या लेटिन अमेरिका ।"[8] यही स्थिति दक्षिण एशिया में भी देखी जा सकती है ।

सांस्कृतिक क्षेत्र में भी क्षेत्रीय सहयोग एक सीमा तक ही स्थापित किया जा सकता है, क्योंकि भारतीय संस्कृति के हावी होने के डर से छोटे छोटे राष्ट्र भयभीत हैं । दक्षिण एशिया का शासक वर्ग भी अपनी सत्ता को बचाये रखने के लिये जातीय, धर्म एवं भाषा के आधार पर बहुसंख्यकों को अल्पसंख्यकों के विरुद्ध भड़काते रहते हैं, जिससे साम्प्रदायिक विद्वेष का भाव बना हुआ है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग के विकास की काफी कम संभावनायें हैं । सार्क का भविष्य इस दृष्टि से अनिश्चित बना हुआ है । जैसा कि पाकिस्तान के विदेश मंत्री आगाशाही ने अप्रैल 1981 में सी.एस.सी.डी की सातवीं बैठक के समक्ष बोलते हुये कहा था कि- "क्षेत्रीय स्तर पर सहयोग का वातावरण सहायक नहीं है । अंतर्क्षेत्रीय विवाद एवं असमानतायें,

भूराजनैतिक चुनौतियां, विभिन्न प्रकार के झुकावों से परिपूर्ण विदेश नीतियां, आकार, जनसंख्या, स्थिति एवं स्तर में असमानता आदि राष्ट्रीय एवं सामूहिक आत्मनिर्भरता के विकास में सहायक नहीं है ।"[9]

कुछ विद्वानों का मानना है कि जब "ई.ई.सी और एशियान" जैसे क्षेत्रीय आर्थिक संगठन सफलतापूर्वक कार्य कर रहे हैं तो सार्क संगठन की सफलता संदिग्ध क्यों है ? इसका कारण यह है कि इन संगठनों में राजनैतिक एवं सामरिक विभिन्नता नहीं है, प्रभाव एवं प्रभावी के सम्बन्ध भी सार्क की भाँति नहीं है । औद्योगिक प्रतिस्पर्धा इतने बड़े पैमाने पर नहीं है तथा ये संगठन धनी राष्ट्रों के आत्मनिर्भर संगठन है,[10] जबकि सार्क गरीब राष्ट्रों का बाह्यशक्तियों पर निर्भर संगठन है । जैसा कि बंगला देश के राष्ट्रपति एच.एम.इरशाद का मानना है कि "हम मनोवैज्ञानिक रूप से बंटे हुये हैं, हमारे मध्य जो विभिन्नतायें हैं उन्हें हम जादुई तरीके से नहीं मिटा सकते "सातों राष्ट्रों के सम्बन्ध तनावमुक्त तथा सामान्य नहीं रहे हैं ।"[11] इस प्रकार ई.ई.सी एवं "एशियान" जैसे संगठनों से सार्क संगठन की स्थिति भिन्न प्रकार की है । यही कारण है कि सार्क संगठन की सफलता पर प्रश्न चिन्ह लगाये जाते रहे हैं ।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अगर वास्तव में सार्क संगठन को स्थायी एवं मजबूत स्वरूप प्रदान करना है तो इसके सदस्य राष्ट्रों को अपनी सभी समस्यायें शांति, सद्भाव, आपसी विश्वास एवं द्विपक्षीय आधार पर सुलझाने की कोशिश करनी चाहिये । सभी राष्ट्रों को एक संयुक्त दृष्टिकोण का भाव पैदा करके क्षेत्र में बाह्य शक्तियों की प्रतिस्पर्धा को रोकना चाहिये तथा ईमानदारी से एक दूसरे की क्षेत्रीय अखण्डता का आदर करना चाहिये । सार्क

का भविष्य इसके सदस्य राष्ट्रों के आपसी सम्बन्धों पर निर्भर करता है, विशेषकर भारत और पाकिस्तान, जोकि सार्क के दो बड़े महत्वपूर्ण राष्ट्र है का सकारात्मक दृष्टिकोण महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करेगा ।

सार्क की सफलता के लिये मित्रवत सहयोग की आवश्यकता है । बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रों पर प्रभाव स्थापित करने की कोशिश न करके समानता के भाव का विकास करें, ।इस तरफ भारत के सार्क के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को एक अच्छी शुरूआत माना जा सकता है। तथा छोटे-छोटे राष्ट्र गुटबद्ध होने की कोशिश न करें ।

"अभिजन से अभिजन" सहयोग के रूप में सार्क का जो गठन हुआ है उसे "जनता से जनता" तक जोड़कर सार्क की सफलता को स्थायी बनाया जा सकता है ।

दक्षिण एशिया के राष्ट्र सांस्कृतिक रूप से जुड़े हुये हैं । दक्षिण एशिया के दो बड़े विरोधी राष्ट्र भारत और पाकिस्तान, सांस्कृतिक रूप से काफी समानता रखते हैं । पाकिस्तान में मोहनजोदड़ो और हड़प्पा तथा भारत में दिल्ली, आगरा, अजमेर और लखनऊ एक दूसरे के लिये आकर्षण का केन्द्र बने हुये हैं । धर्म और भाषा की एकता भी देखने को मिलती है । इनके नकारात्मक दृष्टिकोण को त्यागकर सकारात्मक कदम उठाकर, महत्वपूर्ण उपलब्धियां हासिल की जा सकती है ।

कला और संस्कृति के क्षेत्र में सक्रिय सहयोग क्षेत्र की सुरक्षा एवं स्थायित्व में सहायक होगा क्योंकि इससे साम्प्रदायिक सद्भाव का विकास करके जनता से जनता को जोड़कर स्थायी सहयोग को मजबूत बनाने की तरफ कदम बढ़ाये जा सकेंगे । इसके बाद आर्थिक एवं राजनैतिक सहयोग की तरफ स्वत: ही कदम बढ़ाये जा सकेंगे ।

इस प्रकार क्षेत्रीय सहयोग की तरफ सार्क के गठन को दक्षिण एशिया में एक शुभ शुरूआत माना जा सकता है, इसकी असफलता भविष्य में सभी प्रकार के क्षेत्रीय सहयोग की तरफ उठाये जाने वाले रास्तों को बंद कर देगी ।

अंत में श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने के शब्दों को उद्धृत करते हुये कहा जा सकता है कि- "सार्क रूपी जहाज चल चुका है, इस बात की आशा की जानी चाहिये कि उसके ऊपर कोई विद्रोह नहीं होगा ।"[12]

CHAPTER - V

1. Ed.-"South Asian Regional Cooperation" Commercee Vol.147 No.3768 Aug.20, 1983 p.277.
2. Atiur Rahman- Political Economy of SARC (New Delhi) 1986 p.14.
3. Ibid- p.20.
4. Ibid-p.15.
5. Ibid- p.16.
6. Pot (Bangladesh Series) Vol.X No.104 May 22,1985 pp.800-801.
7. Sun December 10, 1985.
8. Atiur Rahman- Political Economy of SARC (New Delhi) 1986 p.15.
9.
10. Sun- July 25, 1986.
11. Sun- Aug.13, 1986.
12. Sun- Dec.7, 1985.

B I B L I O G R A P H Y

Secondary Sources

(I) BOOKS

1. Bandaranaike, S.W.R.D.- To-wards a newera (Government of Ceylon Colombo)1961.

2. Committee for Rational Development-Srilanka the ethnic Conflict(Navrang-New Delhi) 1984.

3. Farmer, B.H.- An Introduction to South Asia(Methuen-(Newyark)1983.

4. Jupp, James-Srilanka-Third World Democracy (Frankcass & Co.London)1978.

5. Kodikara, S.U.-Foreign Policy of SriLanka (Chanakya Pub.-New Delhi) 1982.

6. Lovrentyev, Alexander- USA & Asia(Sterling Pub. New Delhi) 1982.

7. Muni, S.D. and Muni, Anuradha-Regional Cooperation in South Asia (National Pub. New Delhi) 1984.

8. Paranjpe, Srikant-India and South Asia since 1971 (Radiant Pub.New Delhi) 1985.

9. Rahman, Atiur-Political Economy of SARC (Sterling-New Delhi) 1986.

10. Wilson, A.J.- Politics in Sri Lanka 1947-79(Macmillan-London)1979.

11. Wolpert, Stanley-Roots of Confrantation in South Asia (Oxford University Press-New Yark) 1982.

12. Wriggins, W.H.-Ceylon dilemmas of a new nation (America) 1968.

(II) BOOKS (Ed.)

13. Agwani,M.S. Ed.-South Asia:Stability and Regional Cooperation (Centre for research rural & Industrial development-Chandigarh) 1983.

14. Bhatiya,B.M.Ed- Food Security in South Asia (Oxford & I.B.H.-New Delhi) 1985.

15. Chopra,Pran Ed. Future of South Asia (Macmillan-New Delhi) 1986.

16. De Silva,K.M.Ed.-Sri Lanka: A Suvey (C.Hurst & Co. London) 1977.

17. Gupta,Bhabani Sen Ed.- Regional Cooperation and development in South Asia Vol. 1 & 2 (South Asian Pub. New Delhi) 1986.

18. Satymurty,K.- Ed.-South Asian Regional Cooperation South Asian Pub. New Delhi) 1982.

19. Wilson,A.J. and Dalton,Dennis-Ed. The States of South Asia (Vikas Pub. New Delhi) 1984.

PRIMARY SOURCES

I. Articles

20. Ahmad,Sultan "Filling the void in South Asia" Indian and Foreign Review (New Delhi) Vol. 20 No.20 Aug.1-14, 1983 pp. 22-23.

21. Amarasingham, S.P. - "Whither South Asia ?" Tribune (Colombo) Vol. 25 No.40 May 2, 1981 pp.2-4.

22. Arora,V.K. - "SAARC; Prospects of Cooperation" India Quarterly (New Delhi) Vol. XL No.1 Jan.-March,1986 pp. 69-77.

23. Ayoob,Mohammad- "SARC in comparative perspective" Asian Survey (California) Vol. XXV No.4 April,1985 pp. 443-57.

24. Bertocci,Peter J. - "Bangladesh in 1985" Asian Survey (California) Vol. XXVI No.2 Feb.1986 pp. 232-34.

25. Bhandari,Romesh - "South Asia Summit" Mainstream (New Delhi) Vol.XXIV Nos. 13 & 14 Nov. 30,1985 pp.15

26. Bhatiya,B.M. - "Food Security in South Asia" India Quarterly (New Delhi) Vol. XL Nos. 3 & 4 July-Dec.84 pp. 301-13.

27. Bhaumik,Kirit- "Dacca's Initiative" World Focus (New Delhi) Vol. 3 No.3 March-1982.

28. Bhokhari,Imtiaz H. "South Asian Regional Cooperation" Asian Survey Vol. XXV No.4 April,1985 pp. 371-90.

29. Bhutt,P.R. "Trade Flows in South Asia" India Quarterly Vol. XL. Nos 3 & 4 July-Dec. 1984 pp. 287-300.

30. Chaudhuri,B.R. "Energy resources : Scope for Regional Cooperation" Commerce (Bombay) Vol. 143 No. 3681 Annual number 1981 pp. 93-95.

31. Chopra,Pran - "Fact and Fictional Inequality" Mainstream (New Delhi) Vol. XXIV Nos. 13 & 14 Nov.30, 1983 pp. 21-23.

32. Dagli, Vadi Lal "South Asia Devided and Exploited" Commerce Vol. 143 No. 3681 Annual No. 1981 pp. 7-10.

33. Diplomatic Correspondent "South Asian Cooperation" Democratic World (New Delhi) Vol. XII No.15 April 10, 1983, pp. 7-8.

34. Desai,H.B. - "Regional Cooperation in Shipping" Commerce Vol. 143 No.3681 Annual No. 1981 pp. 61-64.

35. Desai,M.V. "Declaration of Interdependence" Commerce Vol. 147 No. 3768 Aug.20, 1983 p.280.

36. Ed. - "Islands can be shared" The Economist (Singapore) Vol. 300 No. 7458 Aug 9-15,1986.

37. Ed. - "Road to Dhaka" Mainstream Vol. XXIV Nos. 13 & 14 Nov. 30, 1985 pp. 6-7.

38. Ed. - "South Asian Regional Cooperation" Commerce Vol. 147 No. 3768 Aug. 20, 1983 p.277.

39. Gaungal,S.C. "Spot light on South Asia : Cooperation and Crisis" Gandhi Marg (New Delhi) Vol.4 Nos. 2 & 3 May-June 1982 pp. 311-14.

40. Gupta,Amit "Cultural Exchanges in South Asia" Mainstream Vol. XXIV Nos. 13 & 14 Nov.30, 1985 pp. 46-47.

41. Haksar, P.N. "South Asia : Stability and Regional Cooperation" Mainstream Vol. XXIV Nos. 13 & 14 Nov.30, 1985 pp. 16-18.

42. Kapur, Pratap- "SARC Whither Regional Cooperation?" Democratic World Vol. XII No. 35 April 28,1983 pp. 6-7,17.

43. Kearney,Robertn "Sri Lanka in 1985" Asian Survey Vol. XXVI No.2 Feb. 1986 pp. 219-23.

44. Khanal,Y.N. "Nepal in 1985" Asian Survey Vol. XXVI No. 2 Feb. 1986 pp. 251-52.

45. Khandker,A.K. "South Asian Regional Cooperation" Mainstream Vol. XXIV Nos. 13 & 14 Nov.30,1985 pp.13-14.

46. Khatri,Sridhar K. "South Asian Regional Cooperation" Asian Survey Vol. XXV No.4 April 1985 pp. 426-42.

47. Kumar,Satish "International Perception" World Focus Vol. 4 Nos. 11 & 12, Nov.-Dec. 1983, pp. 27-30.

48. Lavakare,P.J. "Cooperation in Science and Technology" Commerce Vol. 143 No. 3681 Annual No. 1981 pp. 69-91.

49. Mahipal- "SAARC Constraints and Potential" Democratic World Vol. IX No.5 Feb.2,1986 pp. 8-9.

50. Manchanda,Rita "Sti Lanka Crisis : Conflict and Intervention" Strategic Analysis (New Delhi) Vol.X No.5 Aug.1986 p. 571.

51. Maner,James and Segal Gerald- "Causes of conflict : Sri Lankan and Indian ocean strategey" Asian Survey Vol. XXV No.12 Dec.1985 pp. 1165-85.

52. Menon,M.P.M. "Evolution of South Asian Regional Cooperation" Indian and Foreign Review Vol. 23 No.5 Dec. 31, 1985 pp. 4-6.

53. Mishra,K.P. "Regional Peace and Security" India Quarterly Vol. XL Nos. 3 & 4 July-Dec.1984, pp. 262-73.

54. Mukhopadhyay,Deepankar "A Summit to hope" Indian and Foreign Review Vol. 23 No.5 Dec.31,1985 pp. 7-11.

55. Muni,S.D. "Political Issues and South Asian Cooperation" Mainstream Vol. XXIV Nos. 13 & 14 Nov.30,1985,pp.27-29.

56. Ibid "Rajiv Gandhi's neighbourhood policy" Mainstream Vol. XXIV No.25 Feb.22,1986 pp.4-6.

57. Ibid "SARC Building Regionalism From below" Asian Survey Vol. XXV No.4 April 1985, pp. 391-404.

58. Ibid "Strategic Aspects of SARC" Strategic Analysis Vol. IX No.1 April 1984 pp. 23-24.

59. Narain,Iqbal - "India in 1985" Asian Survey Vol. XXVI No.2 Feb.1986 pp. 266-69.

60. Nath,Dewan Berindra "South Asian Cooperation, A case for Caution" Democratic World Vol. X No.15 April 12, 1981 pp. 7-9.

61. Ibid "South Asian Unity : A Longway to go" Democtatic World Vol. X No.18 May 3, 1981 pp. 6-7.

62. Nepal,J.B. "Bhutan and SARC" Indian and Foreign Review Vol. 20 No.20 Aug. 1-14,1983 pp. 10-11.

63. Panda,Rajaram "Regionalism as an approach to peace" Gandhi Marg Vol. 5 No. 1 April 1983 pp. 45-46.

64. Parekh,H.T. - "Close alignment with neighbours" Commerce Vol. 143 No. 3681 Annual No.1981 pp. 21-30.

65. Ibid "Regional Cooperation in South Asia" Public Affairs (Banglore) Vol. XXV No.4 April 1982 pp. 55-60.

66. Pawar,B.B. "Banking: opportunities for Cooperation" Commerce Vol. 143 No. 3681 Annual No. 1981 pp. 45-49.

67. Phandis,Uma Shankar "Regional Cooperation in South Asia" The Overseas Hindustan Times (New Delhi) Vol. XXVII No.20 May 14, 1981 p.13.

68. Ibid "South Asian Cooperation" Indian and Foreign Review Vol. 19 No.11 March 15-31,1982 pp.9-10.

69. Pokhrel,G.P. "Regional Cooperation : A Nepalese view Point" Indian and Foreign Review Vol. 20 No.20 Aug.1-14, 1983, pp. 19-21.

70. Prasad Bimal "India" World Focus Vol.4 Nos. 11 & 12 pp. 73-77.

71. Qureshi,M.L. "Indian development Strategy and South Asian Regional Cooperation" India Quarterly Vol. XL No. 3 & 4 July-Dec.84 pp. 274-76.

72. Rahman,Bazlur "South Asian Cooperation to benefit all nations" Indian and Foreign Review Vol. 20 No.20 Aug. 1-14, 1983 pp. 7-9.

73. Rahman,Syedur "Issues and Agenda for SARC" Asian Survey Vol. XXV No.4 April 1985 pp. 371-90.

74. Raju,V.B. "Search for Regional Cooperation" Commerce Vol. 143 No.3681 Annual No.1981 pp. 15-19.

75. Raman,C.K. "India-Sri Lanka economic relations" Commerce Vol. 143 No. 3681 Annual No.1981 pp. 201-209.

76. Rao,M.S.R.V.Krishna "Need for greater Cooperation" Commerce Vol. 143 No.3681 Annual No.1981 pp. 65-68.

77. Richter,William L. "Pakistan in 1985" Asian Survey Vol. XXVI No.2 Feb.1986 pp. 215-18.

78. Sabrathnam,T. "A view from Sri Lanka" Indian and Foreign Review Vol. 20 No.20 Aug.1-14,1983 pp.24-25.

79. Salam,Abdus "Despite a policy of Terrorism" World Marxist Review (London) Vol.28 No.10 Oct.1985 pp.75-76.

80. Sareen,Rajendra "South Asian Regional Cooperation" Indian and Foreign Review Vol.20 No.20 Aug.1-14,1983,pp.12-1

81. Shahabuddin,Syed "Defence and Development of the Sub-continent" Gandhi Marg Vol.4 Nos. 2 &.3 May-June 1982, pp. 387-92.

82. Singh,L.P. "Regional Powers Vs. Global Power in arms Control" India Quarterly Vol. XXXV No.3 July-Sept.1979 pp. 352-56.

83. Singh,Suneet Vir "Mutual Image Perception in South Asia" Mainstream Vol. XXIV Nos. 13 & 14 Nov.30,1985 pp.40-45.

84. Singh,Tarlok "Directions of advance in SARC" Mainstream Vol. XXIV Nos. 13 & 14 Nov.30,1985 pp. 19-20.

85. Srivastav,R.K. and Kothari,Rajni "SAARC" Seminar (New Delhi) Vol. No. 324 Aug.1986 pp. 22-26.

86. Subrahamanayam,K. "Strategy for peace and security in South Asia" Strategic Analysis Vol.VI No.9 Dec.1982 pp. 513-24.

87. Utrecht,Earnst "Sri Lanka's now Insoluble Crisis" Democratic World Vol. XV No.26 June 29, 1986 pp.8-16.

88. Vajpayee Atal Behari "India and South Asia" Sunday (Calcutta) Vol. 11 No.5 Aug. 21-27,1983 pp. 30-31.

89. Varshney,R.L. "Promotion of Trade & economic relations" Commerce Vol. 143 No.3681 Annual No.1981 pp. 31-43.

90. Venkataraman,R. "Message from Vice-President of India" Mainstream Vol. XXIV No. 13 & 14 Nov.30,1985 p.12.

91. Venkatramani,S.H. and De Silva,Mervyn "Sri Lanka : Hope on the Horizon" India today (New Delhi) Vol.X No.12 June 16-30,1985 pp. 72-73.

92. Vishwant,S. "SAARC's Potential for Regional benefit" Democratic World Vol. XIV No.50 Dec.15,1985 pp.5-6.

93. Vohra,A.M. (Lt.Gen.) "Towards disarmament :Objectives for South Asia" Gandhi Marg Vol.4 Nos. 2 & 3 May-June 1982 pp. 383-87.

94. Vyas,Ashok "Good augury for Regional Cooperation" The Overseas Hindustan Times Vol. XXVII No.47 Nov.19, 1981 p.4.

II. Documents

95. Ministry of External Affairs - SARC Meeting of Foreign Minsters, New Delhi, 1983.

96. Ibid - Male (Maldives) 1984.

97. Ibid - SARC Standing Committee : First Session New Delhi 1984.

98. Ibid - Report of the Fourth Session of Standing Committee, Thimpu (Bhutan) May 10-11, 1985.

99. Ministry of Information and Broad Casting, Government of India- Nehru's Speeches (New Delhi) Vol. One 1949 pp. 300-303.

III. Journals (1980-86)

100. Asian Recorder (New Delhi)
101. Asian Survey (California)
102. Commerce (Bombay)
103. Democratic World (New Delhi)
104. Economic Weekly (Colombo)
105. Far Eastern Economic Review (Hongkong)
106. Gandhi Marg (New Delhi)
107. Indian and Foreign Review (New Delhi)
108. India Quarterly (New Delhi)
109. India Today (New Delhi)
110. Keesing's Contemporary Archives (London)
111. Lanka Guardian (Colombo)
112. Mainstream (New Delhi)
113. Pot (Bangladesh Series) New Delhi 1977-86
114. Public Affairs (Banglore)
115. Seminar (New Delhi)
116. Strategic Analysis (New Delhi)
117. Sunday (Calcutta)
118. The Economist (Singapore)
119. The Overseas Hindustan Times (New Delhi)
120. World Focus (New Delhi)
121. World Marxist Review (London)

IV. News Papers (1980-86)

122. Ceylon daily news (Colombo)

123. Dawn (Karachi)

124. Holiday Weekly (Dhaka)

125. Sun (Colombo)

126. The Bangladesh Times (Dhaka)

127. The Hindu (Madras)

128. The Island (Colombo)

129. Times of India (New Delhi).